धर्म

मार्गशीर्ष २००९

वर्ष ३०



अंक १२

दिसम्बर १९५२

संपादक
पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

वैदिकधर्म

सहसंपादक
महेशचन्द्र शास्त्री, विद्याभास्कर

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु

वी. पी. से ५॥) रु. विदेशके ६॥) रु.

विषयानुक्रमणिका

वर्ष ३३ वैदिक धर्म अंक १२

क्रमांक ४७

▲ मार्गशीर्ष, विक्रम संवत् २००९, दिसम्बर १९५२ ▲

पूर्ण संरक्षण

सनादग्ने मृणसि यातुधानान् न त्वा रक्षांसि पृतनासु जिग्युः।
सहमूराननुदह क्रव्यादो मा ते हेत्या मुक्षत दैव्यायाः ॥

अथर्व० ८।३।१८

हे अग्ने ! तू यातना-देनेवाले दुष्टोंका सदा नाश करता है। राक्षस तुझे युद्धोंमें जीत नहीं सकते। मूढोंके साथ कच्चा मांस खानेवाले क्रूर शत्रुओंको भी ताप दो। तुम्हारे दिव्य शस्त्रोंसे वे शत्रु कदापि न छूट जांय।

वीर यातना देनेवाले दुष्ट शत्रुको दूर करे। अपना इतना सामर्थ्य बढावे कि, शत्रु किसी समय आक्रमण न कर सके। जो शत्रु मूढ तथा क्रूरकर्मा हैं उनको योग्य दण्ड देवें और अपने शस्त्र अस्त्र तथा शत्रु नाशके साधन सदा अपने पास तैयार रखें जिससे शत्रु कदापि हमला करनेका साहस न कर सकें।

▲▲▲

वागाम्भृणीय सूक्त

(ऋ० मं० १०, सूक्त १२५ । ऋषि-वाक्, देवता-वाक्, छन्दस्-त्रिष्टुप् ।)

[अनुवादक— श्री पाण्डेय कपिलदेवनारायणसिंह]

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरा—
म्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभ-
र्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

आदित्य, रुद्र, वसु-सब देवोंके सँग मैं—
करती विचरण; उन सबमें रमनेवाली ।
मैं मित्र-वरुण, इन्द्राग्नि सभीका आश्रय,
दोनों अश्विनिको प्रश्रय देनेवाली ॥ १ ॥

अहं सोममाहनसं बिभ-
र्म्यहं त्वष्टार पूषणं भगम् ।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते
सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥ २ ॥

त्वष्टार तथा, भग, पूषणका मैं आश्रय,
मैं दलित सोमको अवलम्बन देती हूँ ।
मैं हवन-सोम-याज्ञिक, यज्ञोंमें तत्पर—
यजमानोंको अधिकाधिक धन देती हूँ ॥ २ ॥

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां
चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा
भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥ ३ ॥

मैं जगदीश्वरी—समस्त लोककी स्वामिन्,
मैं धन संग्रह करती हूँ, ज्ञानवती हूँ ।
जो देव निमंत्रित होते हैं यज्ञोंमें
उन सबमें आगे मैं पूजित होती हूँ ॥ ३ ॥

परीक्षा-विभाग

प्रमाणपत्र-वितरणोत्सव

हाँसोट— उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंके प्रमाणपत्र तथा पारितोषिक देनेके लिये एक समारंभ, राष्ट्रभाषा परीक्षाओंके प्रमाणपत्रके साथ मनाया गया। गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके मंत्री श्री. जेठालालजी जोषी के हाथोंके प्रमाणपत्र देनेका कार्य सम्पन्न हुआ।

इस अवसरपर श्री क० छ० शेठ हाईस्कूलके मुख्याचार्य श्री० ठाकोरलालजी परिख ने अपने भाषणमें राष्ट्रभाषा तथा संस्कृत भाषाके कारण ही हमारी संस्कृतिका स्थान उच्च है यह बतलाया।

सं. भा. प्र. परीक्षाके केन्द्रव्यवस्थापक श्री. महेन्द्रनाथ-जी वेदालङ्कार ने अपने व्याख्यानमें संस्कृत-भाषाके साथ अन्य प्रान्तीय भाषाओंका संबंध दिखाते हुए कहा, 'यदि प्रान्तीय भाषाओंमेंसे संस्कृत शब्द निकाल दिये जाय तो वह भाषा ही न रहे।' समारंभके अन्तमें संस्कृताध्यापक श्री. बालकृष्ण जयकृष्ण नायक, संस्कृत विशारदने छात्रोंके संस्कृत भाषाके प्रति आकर्षणका वर्णन किया तथा विद्यार्थियोंके परीक्षाओंके लिये तैयार होनेमें उत्साह बताया। आगत सज्जनोंके लिये आभार प्रदर्शित किया गया। इसके बाद समारंभ समाप्त हुआ।

तलमोड— श्री. माधवानन्दजी शास्त्री भारत विद्यालय उमर्गाके अध्यक्षजीने हिन्दी तथा संस्कृत परीक्षामें उत्तीर्ण हुए विद्यार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये। प्रयाग भारत विद्यालय उमर्गाके श्री. कमलाकररावजी; कासारशिर्शीके श्री. वीरुपक्षप्पाजीने उपदेशपरक भाषण किया। श्री. गुण्डेराव अण्णाचार्य शर्मा केन्द्र व्यवस्थापकजीने वार्षिक रिपोर्ट सुनायी तथा राष्ट्रगीत गानेके बाद सभा विसर्जन की गई।

जालना— श्रीमान् गजाननराव साहेब जोशी B.A. LL.B. की अध्यक्षतामें उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र देनेके लिये एक समारंभ मनाया गया। उपाध्यक्ष श्री. बैरामजी साहेब (पारसी), श्री. रेणुकादास रावजी B.A.B.T. (संस्कृत) हेडमास्टरका विद्यार्थियोंके लिये उद्बोधक 'संस्कृत-शिक्षण' विषयपर उत्तम भाषण हुआ।

श्री. अध्यक्षजीने उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र देकर वक्ताजनोंके प्रति आभार प्रदर्शित किया। राष्ट्रगीत होनेके बाद समारंभ समाप्त हुआ।

सैजपुर-श्री. शिवाभाई रणछोडभाई पटेल तालुका (समितिके मंत्री तथा बंबई धारासभाके सभ्य) इनकी अध्यक्षतामें एक प्रमाणपत्र वितरण समारंभ मनाया गया। उनके करकमलोंद्वारा उत्तीर्ण हुए परीक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र दिये गये। संस्कृत के प्रति जनताकी बढती हुई भावना प्रदर्शितकी, सर्व परीक्षार्थियोंका अभिनंदन किया गया। संस्कृत श्लोक और राष्ट्रगीत होनेके पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

हैद्राबाद— ता. २७।१०।५२ के रोज नगर समितिकी एक बैठक हुई। हैद्राबाद तथा सिकन्द्राबादके लिये कार्यकारिणी समितिका सर्व सम्मति सेचुनाव निम्न प्रकारसे हुआ।

अध्यक्ष — प्रो. सितारामरावजी M. A.
उपाध्यक्ष— पं. भीष्मदेवजी शास्त्री
श्री. आर्येन्द्र शर्मा
प्रधान मंत्री – पं. ऋभुदेवजी शर्मा, साहित्यरत्न
सहायक मंत्री– श्री माधवराव पाठक, B A LL. B.
कोषाध्यक्ष – प्रा. खण्डेरावजी देशपाण्डे
सदस्य – श्री. गोपालरावजी अपासिंगीकर M. A. LL. B.
श्री. वसंतरावजी मुखेडकर B.A.LL.B.
श्री. प्रो. हणमंताचार्य उपाध्याय
श्री. वि. कृ. भावे
श्री. वाजिनीदेवी शर्मा
श्री. ए. राघव शर्मा
श्री. गुण्डेराव हरकारे
श्री. गयाप्रसाद शास्त्री
श्री. लक्ष्मण शास्त्री
श्री. प्रो. वी. आर. शास्त्री
श्री. हर्षनाथ शास्त्री

नवीन समिति द्वारा आगामी सत्रके लिये एक विशेष योजनापर भी विचार किया गया। एक प्रस्ताव द्वारा मान,

नीय शिक्षामन्त्री श्री फूलचंदजी गांधीको एवं मॅट्रिकुलेशन बार्डको ८-९-१० वीं कक्षाके लिये संस्कृतको अनिवार्य विषय बना देनेपर अभिनन्दन पत्र भेजना स्वीकृत हुआ। इस प्रकार संस्कृत प्रचारके पुनीत कार्यमें यहाँकी नगर समिति प्रगति पथपर बढ रही है।

अंबाव— ता० १५।११।५२ के रोज श्री पोलिस पटेल घोरीभाई नारणभाई की अध्यक्षतामें समारंभ मनाया गया। प्रभात फेरीके बाद गांधी चौकमें सभास्थान रखा गया। केन्द्रव्यवस्थापक श्री. अमृतलाल व्रजलाल सोनी ने मण्डलका वार्षिक रिपोर्ट सुनाया। तथा मण्डलकी प्रगतिकी प्रशंसा करते हुए संस्कृत भाषाके प्रति प्रेम भाव प्रकट किया गया। इसके बाद विद्यार्थियोंके मनोरंजनके कार्यक्रम पूर्ण होनेपर बहिनोंने गरबे गाये। श्री प्रमुखजीने उत्तीर्ण हुए परिक्षार्थियोंको प्रमाणपत्र देकर सभाजनोंका आभार प्रदर्शित किया। वन्देमातरम् गीत होनेके बाद सभा विसर्जन की गई।

× × ×

आवश्यक सूचनायें

प्रमाण-पत्र

सितंबर १९५२ ई. की परीक्षाओंके प्रमाणपत्र सभी केन्द्रोंको भिजवा दिये गये हैं। केन्द्रव्यवस्थापक महोदय अपनी सुविधानुसार उनका वितरण एक समारोह करके करें। यदि किसी कारणवश वैसा न हो सके तो परीक्षार्थी केन्द्रव्यवस्थापकसे अपना प्रमाणपत्र प्राप्त कर सकेंगे। निश्चित किये गये समारोहसे पूर्व यदि कोई परीक्षार्थी अपना प्रमाणपत्र लेना चाहे तो उसके लिये चार आने देनेपर केन्द्रव्यवस्थापकसे पहले भी मिल सकेगा।

प्रमाणपत्रकी प्रतिलिपि– प्रमाणपत्रके नष्ट होजानेपर या खोजानेपर कोई परीक्षार्थी पुन. अपना प्रमाणपत्र लेना चाहे तो उसको प्रारम्भिणी, प्रवेशिका एवं परिचयके लिये आठ आना तथा विशारदके लिये १) रु शुल्क भेजते हुए अपना नाम, परीक्षा, वर्ष, मास, क्रमसंख्या आदि विवरण भेजना चाहिये।

× × ×

आवेदन पत्र भरनेके नियम

१ परीक्षार्थीको आवेदन पत्र तथा प्रवेश-पत्र देवनागरीमें ही स्वच्छाक्षरोंमें एवं स्वय भरना होगा।

२– यदि परीक्षार्थीको परीक्षामें सीधे बैठनेकी स्वीकृति मिली हो तो उन्हें अपना स्वीकृति पत्र आवेदन पत्रके साथ ही नत्थी करके भेजना चाहिये।

३– परीक्षार्थीको अपना परीक्षा शुल्क केंद्रव्यवस्थापकके द्वारा (मनिआर्डरसे) समिति कार्यालय पारडीमें भिजवाना होगा। यदि अवधिकी अन्तिम तिथितक भी शुल्क न पहुँचेगा तो आवेदन पत्र अस्वीकृत समझा जायगा।

४– परीक्षा शुल्कके मनिआर्डर कूपनपर केन्द्रका नाम और शुल्कका विवरण साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये।

५–दस से कम परीक्षार्थियोंके लिये केंद्र स्वीकृत नहीं किया जायगा। यदि किसी स्वीकृत केंद्रमें किसी समय परीक्षार्थियोंकी संख्या १० से कम हो जायेगी तो वहाँके आवेदकोंको परीक्षा मन्त्रीकी सूचनाके अनुसार पासके किसी केंद्रमें जाकर परीक्षा देनी होगी।

६– जिस आवेदन-पत्रपर केंद्र-व्यवस्थापकके हस्ताक्षर न होंगे वह स्वीकृत नहीं किया जायगा।

७– परीक्षार्थीको परीक्षा संबंधी सभी नियमोंकी जानकारी कर लेना तथा तदनुसार व्यवहार करना होगा।

भारतीय संस्कृतिका स्वरूप

[लेखांक २०]

(लेखक— श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

● ● ● ● ● ● ●

संतप्त विश्वको स्थायी शान्तिका सन्देश

अबतकके कुछ लेखोंमें यह बताया गया कि गुरुकुलीय शिक्षापद्धति द्वारा वैदिककालके युवकोंका निर्माण किस प्रकार होता था तथा वे स्वावलम्बी और स्वसंरक्षणक्षम किस प्रकार बनते थे। इसी प्रकार यह भी बताया गया कि घरकी हीन परिस्थितिका दुष्परिणाम विद्यार्थियोंकी शैक्षणिक उन्नतिपर न हो इसके लिये गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति किस प्रकार उपयुक्त थी।

हमें स्वराज्य प्राप्त हुआ है। अब हमें इसे सज्ज करनेका कार्य करना है। यह कार्य हम जितना निर्दोष करेंगे उतनी ही हमारी भविष्यकालीन स्थिरता बन सकती है। इसके लिये हमें यह देखना है कि प्राचीनकालके ऋषि तरुण पीढीका निर्माण करनेके लिये क्या करते थे।

प्राचीनकालमें शिक्षाक्रम किस प्रकारका था? इस प्रश्नको छोड दें तो भी चलेगा; क्योंकि आज भी हमारे पास उत्तमोत्तम शिक्षाक्रम तैयार करनेके साधन विद्यमान हैं। प्राचीन पद्धतिसे हम वह सब लेनेके लिये तत्पर हैं जिसके द्वारा मानवताका स्तर ऊँचा उठानेमें हमें सहायता प्राप्त हो सकती हो। ऐसी बातोंपर हमें ध्यानपूर्वक विचार करना आज आवश्यक है। इसीलिये अब हम उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयपर संक्षेपसे विचार करेंगे जिसकी कि आज सर्वथा उपेक्षा हो रही है।

योगसाधनकी शिक्षा

गुरुकुलमें विद्यार्थीके प्रविष्ट होते ही उसे अन्य विद्याओंके साथ साथ योगसाधनकी भी शिक्षा दी जाती थी। आजकी शिक्षासंस्थाओंमें इस ओर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता। आज तो यह समझा जाने लगा है कि योगसाधन तो उसके लिये है जिसे इस संसारका परित्याग करना है। किन्तु वास्तविक स्थिति तो यह है कि जो इस संसारमें सुखपूर्वक रहना चाहता है उसके लिये यह योगसाधनका मार्ग अत्यन्त आवश्यक है और योगसाधनकी शिक्षा उसे सुखी बनानेमें अत्यन्त सहायक होती है। हमें संसारमें रहना है। हम किस प्रकार यहाँ सुखपूर्वक रह सकते हैं? शरीर किस प्रकार पूर्ण निरोगी रह सकता है? दीर्घायु कैसे प्राप्त हो? वृद्धावस्थामें भी शरीर किस प्रकार सबल रहे? मन प्रसन्न कैसे रहे? उत्साह किस प्रकार टिका रहे? कार्यक्षमता किस प्रकार बढे? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरमें यही एकमात्र उत्तर दिया जा सकता है कि इन सबके लिये केवल योगसाधन ही एकमात्र मार्ग है। इसीलिये आजकी शिक्षापद्धतिमें उसका समावेश करना आवश्यक है। राष्ट्र निर्माणके कार्यमें बिना इसके प्रगति होना सम्भव ही नहीं है। यही कारण है कि ऋषियोंकी शिक्षापद्धतिमें इसका समावेश स्पष्टतः किया गया है।

योगसाधनके आठ विभाग हैं। इनमें प्रत्येक विभाग मनुष्यकी भिन्नभिन्न शक्तियोंके विकासके लिये है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- योगके आठ विभाग हैं-' यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार - ध्यान-धारणा-समाधि ' इनमेंसे यम और नियमोंका विचार सुविधाकी दृष्टिसे अन्तमें करेंगे तथा शेष छः अङ्गोंका विचार प्रथम करेंगे।

१- आसन

आसन एक प्रकारका व्यायाम है। इसके द्वारा शरीर स्थित रक्तका अभिसरण भली प्रकार हो जाता है। स्नायु निर्दोष हो जाते हैं। शरीरका आरोग्य और बल बढ जाता है। शरीरका आयुरारोग्य बढकर वह दीर्घजीवी बने एतदर्थ इन व्यायामोंका अच्छा उपयोग होता है। आजकी

दृष्टियोंसे इन व्यायामोंका उपयोग शरीरस्वास्थ्यके लिये बहुत अच्छा रहता है।

२- प्राणायाम

शरीर स्थित प्राणसंस्थानके बलकी वृद्धिके लिये यह उपयोगी है। इसके द्वारा शरीरस्थ सम्पूर्ण मल दूर हों तथा आयु बढे इसलिये यह प्रयुक्त होता है। छाती और पेटपर इसका परिणाम प्रत्यक्ष रूपमें एवं रक्त शुद्धिपर साक्षात् तथा उत्साह वृद्धिपर अप्रत्यक्ष रूपमें होता है। प्राणायाम करनेवालेका इसका अनुभव बहुत शीघ्र हो जाता है।

३- प्रत्याहार

स्वार्थी भोगेच्छाओंसे मनको परावृत्त करना और उसे प्रशस्त कर्मोंमें लगानेका प्रयत्न करना इस अनुष्ठानका ध्येय है। स्वार्थी भोगलालसाके कारण काले बाजारोंका जोर कितना बढ गया है! इसपर विचार करनेपर यह बात तत्काल समझमें आ सकती है कि राष्ट्र निर्माणके अनुष्ठानमें इसका कितना महत्व है।

४- ५- ध्यान--धारणा

मनकी धारणाशक्ति बढानेके लिये इसका विशेष उपयोग होता है। मन समर्थ होनेपर ही मनुष्य महत्वके कार्य कर सकता है। मनुष्यके मनको समर्थ बनानेके लिये ही इन साधनोंका उपयोग होनेसे इनका कितना महत्व है, इसे विशेष स्पष्ट करना आवश्यक नहीं है।

६- समाधि

मनोवृत्ति शान्त करके, चित्तकी एकाग्रता साधकर अपनी अन्तः शक्तिका प्रकाश अनुभव करनेकी यह स्थिति है।

ये छहों योगाङ्ग मनुष्यकी शक्तियोंका विकास करनेके लिये अत्यावश्यक हैं और यह बात कोई भी सरलतापूर्वक समझ सकता है। आध्यात्मिक उच्च भूमिकाके अनुभवोंको एक ओर रख देनेपर भी अत्यन्त व्यावहारिक दृष्टिसे यदि हम देखें तो भी इन अङ्गोंका समावेश युवकोंकी शिक्षा पद्धतिमें होना ही चाहिये और वह भी आठवें वर्षसे होना आवश्यक है। तभी उस शिक्षापद्धतिको अतिश्रेष्ठ कहा जा सकता है। शिक्षाविशारदोंको इस ओर ध्यान अवश्य ही देना चाहिये।

इस योगके विषयमें आध्यात्मिकताका जो भय जनतामें पैठ गया है उसे अभ्यासु विद्वानोंद्वारा दूर किया जाना चाहिये। 'हमें जीवनभर सुख मिलता रहे' केवल इसी उद्देश्यको पूर्ण करनेके लिये इसका उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है इसका निश्चय अनुभव द्वारा करके उसे शिक्षापद्धतिमें समाविष्ट किया जाना चाहिये। ऐसा किया गया और नई पीढीको इसका महत्व समझमें आगया तो इस विषयमें बहुत अधिक लिखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष फलदायी अनुभवका साधन-मार्ग है।

अब हम पहले दो 'यम-नियम' का विचार करेंगे। यम भी पांच हैं और नियम भी पांच हैं। ये किस प्रकार उपयोगी हैं इसे अब क्रमसे देखिये—

पांच नियम

१- शुद्धता— स्वच्छता, निर्मलता रखना, मन, इन्द्रिय, शरीर, अन्न, वस्त्र, घर, गली, गांव आदिकी यथाशक्ति अधिक स्वच्छता रखना आरोग्यके लिये अत्यन्त आवश्यक है। अच्छी सफाई रहनेपर ही आरोग्य एवं दीर्घायुष्य बढेगा और यह बात मनुष्यकी इच्छापर निर्भर है।

२- सन्तोष— मनमें सन्तोष रखना, उद्विग्नता दूर करना, जो स्थिति प्राप्त होगी उसीमें मनको बिना उद्विग्न किये सन्तुष्ट रखना भी शरीर निरोग रखनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है।

३- तप— अर्थात् शरीरको कष्ट सहन करनेकी आदत डालनी। सर्वथा आराम पानेकी आदत डालना बडा भयङ्कर है। शीत-उष्ण, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंको हंसते हंसते सहन करनेका अभ्यास मनुष्यको होना चाहिये। अच्छे कार्य करते हुए जो श्रम उठाना पडता है उसे उठाते हुए मनुष्यको घबराना नहीं चाहिये। दिन भरमें १०-१२ घण्टे बिना थके परिश्रम करनेकी आदत मनुष्यको होनी चाहिये, तभी उसकी उन्नति हो सकती है। इसके लिये बचपनसे ही आदत डाल देनी चाहिये। शिक्षाक्रममें इस प्रकारका समयविभाग बनना चाहिये कि इसके अनुसार कार्य करते रहनेपर सतत श्रम करनेका अभ्यास बढता रहे। मनुष्यकी उन्नतिके लिये इस प्रकारके अभ्यासकी नितान्त आवश्यकता है।

४– **स्वाध्याय**— अध्ययन, ज्ञानप्राप्ति, अपनी उन्नतिके लिये, आवश्यक ज्ञानको प्राप्त करना अपने सामर्थ्यका ज्ञान प्राप्त करना तथा ज्ञान एवं विज्ञानकी प्राप्ति करना।

५– **ईश्वर प्रणिधान**— परमेश्वरपर श्रद्धा रखकर उसकी भक्ति करना, उसकी सेवा करना; क्योंकि ईश्वर विश्वरूप है; अतः उसकी सेवा मनुष्यको करनी चाहिये। इससे मनुष्यका बल बढ़ता है। आत्मिक बलका विकास होता है और दीर्घ जीवनकी प्राप्ति होती है।

इन पांच नियमोंके अनुष्ठानसे मनुष्यकी वैयक्तिक शक्तिका विकास हुआ करता है। अतएव इनके अनुष्ठानकी अत्यन्त आवश्यकता है। सार्वजनिक व्यवहारके ये पांच उत्तम नियम हैं। अब हम यमोंका विचार करेंगे।

पांच यम

१– **अहिंसा**— काया-वाचा-मनसा दूसरोंको कष्ट न पहुँचे ऐसा काम करना। यह मनुष्यका आद्य कर्तव्य ही है। दैवी सम्पत्तिके लक्षणोंमें गीताने अहिंसाकी गणना सर्वप्रथम की है। वैदिक धर्म भी अहिंसाको दैवी संपत्तिका प्रमुख लक्षण मानता है। चार वर्णोंमें ब्राह्मण और चार आश्रमोंमें संन्यासी ये अहिंसक ही हैं। वैदिक धर्म यज्ञ-प्रधान है और इस यज्ञका नाम 'अध्वर' अर्थात् 'अ+हिंसा' है। यद्यपि समस्त देव और देवियाँ सशस्त्र हैं तथा यज्ञमें शस्त्रधारी संरक्षक रखना होता है तथापि वैदिक धर्म दूसरोंपर निष्कारण आक्रमण करनेका आदेश नहीं देता; इतना ही नहीं वह तो– मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे। मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्। (यजुर्वेद)

यह वेदकी आज्ञा है। समस्त प्राणियोंके प्रति मित्र दृष्टिसे देखा जावे। सम्पूर्ण विश्व ही परमेश्वरका स्वरूप है, ऐसा माननेवाला क्योंकर दूसरोंपर आक्रमण करेगा? अर्थात् वैदिकधर्मी स्वभावतः अहिंसक ही हैं। किन्तु यदि दूसरेका आक्रमण हुआ तो वह मर जाना उचित नहीं समझता। ऐसे समय तो वह पूरा प्रतिकार करता है। तात्पर्य यह है कि यथासम्भव अहिंसाका पालन किया जावे। क्योंकि अहिंसा ही मानवधर्म है, वही दैवी सम्पत्तिका प्रमुख लक्षण है, ऐसा वैदिक धर्म मानता है।

अहिंसा निषेध वाचक शब्द है। इसका विधायक भाव यह है कि सबका हित किया जाय। इसीके लिये वैदिकधर्मी प्रयत्नशील रहता है। यज्ञका अनुष्ठान विश्व-कल्याणके लिये ही हुआ करता है।

मा हिंस्यात् सर्वाणि भूतानि

यह इसका दृष्टि बिन्दु है। किन्तु यदि कोई आक्रमण कर ही दे तब तो यह चुप नहीं बैठेगा। ऐसी आपत्तिके समय आत्मरक्षण किया जा सके, एतदर्थ इसके सन्मुख समस्त देवदेवियोंके चित्र आदर्श रूपसे विद्यमान हैं। स्वयं अहिंसक रहो, किन्तु यदि गुण्डोंका आक्रमण हो तो प्रत्याक्रमणके लिये सज्ज रहो, सावधान रहो। तुम अपनी असावधानीके कारण उनके आधीन न हो जाओ! वीर बनो और अहिंसक रहो। डरपोक न बनो और असावधान भी न रहो।

२– **सत्य**— सत्य पालन करना दूसरा नियम है। सम्पूर्ण व्यवहारमें सत्यका पालन होना चाहिये। सत्य और अहिंसाकी जोड़ी है।

३– **अस्तेय**— चोरी न करना, चुराकर दूसरेकी सम्पत्तिको न लूटना। किसी भी स्थितिमें दूसरेकी सम्पत्ति न हड़पना।

४– **ब्रह्मचर्य**— प्रथम आयुमें ब्रह्मचर्यका पालन करना, गृहस्थाश्रममें नियमित ब्रह्मचर्यका पालन करना, वानप्रस्थ एवं संन्यासमें तो ब्रह्मचर्यका पालन किया ही जाता है।

५– **अपरिग्रह**— अपने पास अत्यधिक भोगसाधनोंका संग्रह करके न रखना। क्योंकि ऐसा होनेपर बहुतोंको भोगसाधन प्राप्त नहीं होते और अशान्ति निर्माण होती है। अपरिग्रह वृत्ति समाजमें शान्ति प्रस्थापित करनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। विश्वशान्ति भी अपरिग्रह वृत्तिसे ही स्थिर हो सकती है।

ये हैं पांच नियम। मनुष्यके वैयक्तिक कर्तव्योंका निर्देश इन पांच नियमों द्वारा किया गया है तथा वह मानव-समाजमें किस प्रकार बर्ते यह इन पांच नियमों द्वारा निर्दिष्ट किया गया है। गुरुकुलमें प्रविष्ट हुए हुए बालकको योग-साधनकी शिक्षा प्रारम्भसे ही दी जाती थी और उनमें भी विशेषतः 'यम-नियमों' की शिक्षापर अधिक बल दिया

जाता था। गुरुकुलके १२ वर्ष मुख्यतः इसीके लिये व्यय होते थे।

आजका सदोष मार्ग

आज विश्वविद्यालयोंमें छात्र शुल्क देकर प्रवेश पाते हैं तथा शुल्क देकर विज्ञानका अध्ययन करते हैं। विज्ञान मनुष्यके हाथमें एक महान शक्ति सौंपता है। एक अणुबम द्वारा बडे बडे नगर उध्वस्त हो जाते हैं। यह विद्या इतनी बडी शक्तिवाली है। सम्भवतः यह अणुशक्ति जिस प्रकार आज विध्वंसक है उस प्रकार कभी निर्माणकर्त्री भी हो सकती है। किन्तु जो शुल्क देता है उसके हाथमें इतनी बडी शक्ति दी जाती है। यह शिक्षार्थी अहिंसक वृत्तिका है अथवा नहीं, इसमें अस्तेयकी मात्रा कितनी है, अपरिग्रह इसमें है या नहीं इत्यादि बातोंकी ओर बिना ध्यान दिये केवल शुल्क दे सकनेवालेके हाथ में इतनी बडी शक्ति सौंप देना क्या बुद्धिमत्ता है ?

गुरुकुल पद्धतिमें इस बातपर प्रथम ध्यान दिया जाता था कि यह शिष्य यम नियमोंका पालन कर सकता है अथवा नहीं। इस बातकी पूरी परीक्षा कर लेनेपर उसे शस्त्रास्त्र विद्या सिखाई जाती थी। जो यमनियमादिका पालन न कर सकें उन्हे शक्तिकी विद्या प्राप्त करनेका अधिकार नहीं था।

गुरुकुलोंमें तो शुल्क लिया ही नहीं जाता था। सबको निःशुल्क शिक्षा प्राप्त होती थी। इतना ही नहीं अपितु भोजन, वस्त्र, निवास आदिका सम्पूर्ण व्ययभार भी गुरुकुलोंपर ही पडता था। साधारण रूपमें साक्षरताकी विद्या सभीको सिखाई जाती थी। किन्तु जिसके द्वारा विधायक अथवा विघातक बडे बडे कार्य होते रहते थे ऐसी महाशक्तिकी विद्या विद्यार्थीकी योग्यायोग्यताका विचार किये बिना नहीं सिखाई जाती थी। यही बात अध्यात्म-विद्याके विषयमें थी।

वर्तमान पाठशाला एवं विद्यालयोंमें विद्यार्थियोंकी अधिकारिताका विचार नहीं किया जाता। जो फी भर दे वह अधिकारी और जो फी न भर सके वह अनधिकारी यही आजका नियम है। यह प्रणाली कितनी घातक है, इसका विचार शिक्षा-विशेषज्ञोंको करना चाहिये।

आज हम जिसे विज्ञानकी शिक्षा देते हैं वह यमनियम सम्पन्न है अथवा नहीं, वह अहिंसक वृत्तिवाला है अथवा नहीं, वह अपरिग्रह वृत्तिका है अथवा परिग्रह वृत्तिका है यह सब देखे बिना केवल फी देने मात्रसे अथवा इतने दिनोंकी उसकी उपस्थिति है यह देखकर ही उसे विज्ञानकी शिक्षा देना और चाहे जितनी बडी मारक शक्ति उसके आधीन कर देना कितना बडा अनर्थ है ! किन्तु यही बात विश्वके सभी शिक्षणालयोंमें आज की जारही है। आज इसपर गम्भीरतासे विचार करनेका समय उपस्थित हो गया है।

आज योगसाधनकी शिक्षा नहीं दी जाती। यमनियमोंकी शिक्षा भी नहीं दी जाती। जो फी देगा उसे-चाहे फिर वह गुण्डा ही क्यों न हो- कोई भी विद्या सिखा दी जाती है। यही कारण है कि युद्धका भय बना रहता है और बढता जारहा है।

ऋषिकालीन गुरुकुलोंमें यमनियमोंकी शिक्षा दी जाती थी। अहिंसा मानवी जीवनका नियम है, यह बात उस शिष्यको समझा दी जाती थी और जो यमनियमोंमें उत्तीर्ण होता था या जिसके जीवनमें यम-नियम एकरस हो जाते थे उसीको विज्ञान अथवा महाशक्तिकी शिक्षा दी जाती थी। यह परिपाटी कितनी उचित है इसे आज कोई भी समझ सकता है।

भारतका महत्वपूर्ण सन्देश

सभी देशोंके विचारवान् व्यक्ति चाहते हैं कि जागतिक युद्ध न हों; किन्तु उन्हे रोकनेके उपाय उन्हें नहीं सूझते। भारतीय सभ्यता एतदर्थ आगे बढकर कह रही है कि 'यदि विश्वमें युद्धोंको रोककर स्थायी शान्ति स्थापित करनी हो तो इस शान्तिका पाया शिक्षापर जमाओ। ऋषियोंके गुरुकुलोंमें योगसाधन एवं यमनियम सिखाये जाते थे। वही पाठ्यक्रम आरम्भ करो तथा जो छात्र शमदम सम्पन्न बने उसीको महाशक्तिकी विद्या सिखाओ।'

आजके संतप्त विश्वको स्थायी शान्तिके लिये भारतीय संस्कृतिका यही सन्देश है।

अनुवादक—महेशचन्द्रशास्त्री, विद्याभास्कर साहित्यरत्न

‘नमस्ते’ एक पद है वा दो पद?

लेखक— श्री. दीनानाथशर्मा शास्त्री, सारस्वत, विद्यावागीश, विद्याभूषण, विद्यानिधि, देहली

‘नमस्ते’ का प्रचार स्वा. दयानन्दजीने वेदसे देखकर किया— यह बताया जाता है। तब उन्हें यह ‘नमस्ते’ जैसा इष्ट था, वैसा आर्यसमाजमें इसका प्रयोग होना चाहिये। अनुसन्धानसे प्रतीत होता है कि स्वामीजी ‘नमस्ते’ को दो पद मानते थे। इसमें कुछ प्रमाण देखिये- स्थान-स्थानपर उन्होंने लिखा है— ‘नमस्ते’ इस वाक्य से परस्पर नमस्कार कर’ (संस्कार विधि पृ. १३३ विवाह प्रकरण) ‘नमस्ते- यह वेदोक्त वाक्य’ (संस्कार विवाह० पृ० १७५ की टिप्पणी) यहांपर श्री स्वामीजीने ‘नमस्ते’ यह ‘वाक्य’ माना है। वाक्य, ‘पदोच्चय’ पदसमूहको कहते हैं। ‘नमस्ते’ को एक पद माननेपर वह पद समूह नहीं रहता। न्यूनसे न्यून दो पद मानने पर ही वह ‘वाक्य’ बना रह सकता है, एक पद माननेपर वह ‘वाक्य’ कैसे हो सकता है?

इसका दूसरा प्रमाण यह है कि— ‘नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च’ (यजु. १६।३२) इस मन्त्रके अर्थको बताते हुए श्री स्वामीजीने लिखा है— ‘नमस्ते इस वाक्यका उच्चारण करके’ ‘नमोचाम नमो अस्मै’ (ऋ० १।११४।११) इस मन्त्रके अर्थमें भी स्वामीजीने ‘नमस्ते ऐसे वाक्यको कहें’ यह लिखा है। इन वेदमन्त्रोंके अर्थमें भी स्वामीजीने ‘नमस्ते’ यह ‘वाक्य’ माना है, “नमस्ते यह पद” इस प्रकार एक पद नहीं माना। यह तो पूर्व सरल बात हुई। इसमें अन्य विशेषता यह है कि— दोनों मन्त्रोंमें ‘नमः’ यह. पद हैं, ‘नमस्ते’ नहीं; तब स्वामीजीने उसके अर्थमें ‘नमस्ते’ यह वाक्य क्यों लिखा? इससे स्पष्ट है कि— वे ‘नमः’ इस पदको अभिवादनार्थक मानकर सम्मुखस्थको सम्बोधित करनेके लिये उसके साथ ‘ते’ यह सर्वनाम शब्द भी जोड़ना चाहते थे। तब उनके मतमें ‘नमस्ते’ में दो पद होनेसे उसके लिए उनसे प्रयुक्त ‘वाक्य’ शब्दकी सार्थकता हुई।

‘नमस्ते’ में दो पद इष्ट होनेका श्री स्वामीजीका तीसरा प्रमाण यह है कि— ‘आर्योद्देश्यरत्नमाला’ आदिमें उन्होंने ‘नमस्ते’ का अर्थ ‘मैं तेरा मान करता हूं’ यह लिखा है। स्पष्ट है कि— इसमेंका ‘तेरा’ शब्द ‘ते’ का ही अर्थ है, और मान करना ‘नम’ का अर्थ हैं। इस प्रकार भी ‘नमस्ते’ में दो पद सिद्ध हुए। जब ऐसा है, तब ‘नमस्ते’ को एकपद रूपमें प्रयुक्त करना वा उसे एक पद सिद्ध करना, स्वामीजीसे विरुद्धता है, अथवा यह कहना चाहिये कि— अवैदिकता है।

अथवा वेदादि शास्त्रसे कहीं ‘नमस्ते’ की एकपदता सिद्ध भी होजाय; तब भी उसका मान अवश्य कर्तव्य हो सकता है; पर जहांतक हमने विचारा है— ‘नमस्ते’ वेदादिमें कहीं एक पद नहीं माना गया है। वेदोंकी रक्षाके लिए पदानुक्रमणिकाएँ तथा पदपाठ बनाये जाते हैं। पदपाठ तो बहुत प्राचीन समयसे चला आरहा है। इनमें कहीं भी ‘नमस्ते’ यह एक पद नहीं मिलता। आर्य समाजके श्रद्धेय स्वामी विश्वेश्वरानन्दजी एवं स्वामी नित्यानन्दजीने चार वेदसंहिताओंकी पदानुक्रमणिकाएं बनाई हैं, उनमें भी कहीं ‘नमस्ते’ यह पद ही नहीं मिलता। इससे स्पष्ट है कि- वेदमें ‘नमस्ते’— कहीं भी एक-पद रूपमें नहीं आया। एक ही मन्त्रमें ठहरे हुए ‘नमस्ते’ में का ‘नमः’ शब्द ‘न’ अक्षरके क्रममें और ‘ते’ पद ‘त’ अक्षरके क्रममें आया है।

वेदकी रक्षाके लिए पदपाठके अतिरिक्त क्रम, घन, जटा माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ- ये नौ, कुल दस पाठ आये हैं; पर इनमें भी कहीं ‘नमस्ते’ को एक पद नहीं माना गया। इससे स्पष्ट है कि- वेदमें ‘नमस्ते’ कहीं एकपद रूपमें इष्ट नहीं।

फिर वेदके ज्ञानार्थ छे वेदाङ्ग भी बनाये गये हैं; पर उनमें भी कहीं ‘नमस्ते’ को एक पद नहीं माना गया है। वेदाङ्गोंमें पदोंके ज्ञानार्थ व्याकरण सभीमें मुख्य है— यह बात सर्वसम्मत है, पर उस व्याकरणमें भी कहीं ‘नमस्ते’ एकपद रूपमें व्युत्पादित नहीं किया गया। उसमें ‘तेमयावेक वचनस्य’ (पा० ८।१।२२) इस सूत्रसे षष्ठी तथा

चतुर्थीके एक वचनमें 'तव' तथा 'तुभ्यम्' को 'ते' आदेश किया जाता है। तब वेदाङ्गके अनुसार वेदमें भी 'नमस्ते' पदद्वयात्मक ही सिद्ध हुआ। इसके अतिरिक्त कारकोंमें 'नमः' के योगमें चतुर्थी विभक्ति की गई है, पर 'नमस्ते' को कहीं भी स्मृत नहीं किया गया- जिससे उसके योगमें भी किसी विशिष्ट विभक्तिका विधान हो। शाकटायन, उज्ज्वलदत्त आदिने अपने उणादियोंमें, पाणिनिने अपने कृदन्तोंमें 'नमस्ते' इस पदको कहीं निष्पन्न नहीं किया। 'नमस्' को नम् धातुसे असुन् प्रत्ययमें सिद्ध किया गया है (उ० ४।१९९)। 'नाम' धातुको असच् आदि प्रत्यय करके 'नणसः' आदि प्रयोग भी बनाये गये हैं (उ० ३।११७); पर 'नमस्ते' को कहीं निष्पन्न नहीं किया गया। तद्धितोंमें भी कहीं इसे निष्पन्न नहीं किया गया, किसी गणपाठमें भी इसे एकपद रूपमें निर्दिष्ट नहीं किया गया। किसी अव्ययकी अनुक्रमणिका, वा निपातानुक्रमणिकामें भी 'नमस्ते' को एकपद रूपमें स्मृत नहीं किया गया। श्री स्वामीजीने भी अपने 'अव्ययार्थभाग' में 'नमः' को तो लिखा है- 'नमो नतौ'। पर 'नमस्ते' नहीं लिखा- इससे भी स्पष्ट है कि- 'नमस्ते' एक पद व्याकरणमें भी नहीं। उसके किसी सूत्र वा उदाहरणमें भी उसे एक-पद रूपमें नहीं माना वा स्मृत किया गया।

अब वेदाङ्ग 'निरुक्त' को भी देख लीजिये-यह भी व्याकरणका पूर्तिकर्ता है। यह 'सर्वाणि नामानि आख्यातजानि' इस सिद्धान्तका माननेवाला है, इससे 'नमस्ते' यह रूढि शब्द तो रहा नहीं; शेष रही आख्यातसे प्रत्यय देकर निष्पत्ति; तो णम् धातुको असुन् प्रत्यय बनाकर 'नमस्' तो बनाया जाता है; पर कहीं 'अस्ते' प्रत्यय नहीं माना वा स्मृत किया गया; जिससे 'नमस्ते' यह एक पद सिद्ध हो जावे। किसी निघण्टु वा कोषमें भी 'नमस्ते' पद नहीं आया- इससे स्पष्ट है कि- वह एक पद नहीं।

अब वेदभाष्योंको लीजिये- वेदके भाष्यकार सायणाचार्य सुप्रसिद्ध ही हैं, अन्य भी वेङ्कटमाधव, स्कन्दस्वामी उवटदेव, हरदत्त, आत्मानन्द, रावण आदि वेदोंके अंशतः भाष्यकार प्रसिद्ध हैं। पर वेदमें आये 'नमस्ते' को इसमें किसीने भी एक पदकी तरह व्याख्यान नहीं किया। अर्वाचीन भाष्यकारोंके स्वामी दयानन्दजी सुप्रसिद्ध हैं; पर उन्होंने भी मन्त्रमें आये हुए 'नमस्ते' का कहीं भी एक पदकी तरह व्याख्यान नहीं किया; सर्वत्र 'नमः, ते-तुभ्यम्' ऐसी व्याख्या की है। आजकलके आर्यसमाजके वेद भाष्यकार श्री राजाराम शास्त्री, श्री क्षेमकरण त्रिवेदी, श्री जयदेव विद्यालङ्कार श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, आदियोंमें भी किसीने 'नमस्ते' को एक पदकी तरह व्याख्यान नहीं किया।

अब वेदके अन्तरङ्गकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। मन्त्रोंपर स्वर भी दिये गये हैं, वे भी व्यर्थ नहीं है, वे भी वेदसे इष्ट पदको बताया करते हैं। 'नमस्ते' को दो पद माननेपर तो स्वरसञ्चार ठीक लग जाता है, 'नमस्' असुन् प्रत्ययान्त (उ० ४।१८९) है, नित् होनेसे इसे (पा० ६।१।१९७) आद्युदात्त स्वर होगा, शेषको अनुदात्त (पा० ५।१।१५८) होगा 'नमः'। फिर सन्धिमें उस अनुदात्तको स्वरित (पा० ८।४।६६) होकर 'नमः' ऐसा बनेगा। 'ते' अनुदात्त (पा० ८।१।१८) होता है। उसको स्वरितपूर्व होनेसे (पा० १।२।३९) प्रचय होगा। यदि उसके सामने कोई उदात्त वा स्वरित आजावे; तो उसे अनुदात्ततर (पा० १।२।४०) हो जावेगा। 'नमस्ते' को एक पद माननेपर स्वरसञ्चारका विधायक कोई सूत्र नहीं मिलता। यदि इसे प्रातिपदिक मानकर अन्तोदात्त माना जावे; तो ऐसी सिद्धि वैदिक स्वरसे विरुद्ध होगी। यदि उसे निपात मानकर आद्युदात्त किया जावे, तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि इसकी निपातता ही असिद्ध है, किसीने भी 'नमस्ते' इसको इसी रूपमें वा अव्यय नहीं माना। भित्तिके ही असिद्ध होनेसे उसपर चित्र कैसे बन सकता है?

यदि वेदको 'नमस्ते' एक पद ही इष्ट होता; तो वेदमें उसके आगे कोई प्रत्यय वा समस्त शब्द कहीं होता; पर वेदमें 'नमस्ते' के आगे तो प्रत्यय वा समासयुक्त शब्द आते हैं, जैसे कि- 'नमस्यः' (ऋ २।२।३) 'नमस्यन्ति' (१।३६।१९) नमस्यन्तः' (१।१२५।३) नमस्यः (५।२७:११) 'नमस्यामः' (३।१७।४) नमस्वी (५।३१।७), नमस्वत् (१।१९५।३) 'नमस्विनः' (७।१४।१) 'अक्रांदुक्तः... नमस्याम्' (७।४।११) यहाँ 'नमः

के आगे प्रत्यय हैं 'नमोभिः' (ऋ० १।२४।१४) 'नमसा' (१।१७।३) यहांपर 'नमः' के आगे विभक्ति आई है। 'नमोवाके' (अथर्व० १३।६।५) 'नमउक्ति' (ऋ० ३।१४।२) नमः-वक्तिः' (१०।१३१।२) नमः-वधः (३।७३।३) नमस्कारेण (अथर्व० ४।३९।९) 'नमस्कृत्य' (अ० ७।१०७।१) इत्यादिमें 'नमस्' के आगे समासयुक्त शब्द भी आया है, पर 'नमस्ते' के आगे न कोई प्रत्यय, न कोई विभक्ति, न कोई समासयुक्त शब्द आया है। इसके अतिरिक्त वेदमें 'नम उक्तिं विधेम' (ऋ० १।११९।१) 'नम उक्तिं जुषस्व' (ऋ० ३।१४।२) 'नम उक्तिम अहम् आदिक्षि' (ऋ० ५।४३।९) 'नम इत् कृणोमि' (अथर्व० ९।२।१९) 'नमो भरन्तः' (ऋ० १।१।७) 'नम एवास्तु' (अथर्व० १।१३।३) 'अवोचाम नमो अस्मै' (ऋ० १।११४।११) 'अकरं नमः' (अथर्व० १४।२।४६) 'नमः कुरु' (अथर्व० १४।२।२०] इस प्रकार वहांपर 'नमः' का कथन तो आया है, 'नमस्ते' का नहीं। 'नमस्तेभ्यः' (यजु. १६।६५) 'नमो वः' (अथर्व० १८।४।८५) 'तेभ्यो वो नमः' (अ० ३।२६।१) 'नम एभ्यः' (अ० ३।२७।१) 'नमो वाम्' (गोपथ ब्रा० १।२।५) 'नमो वाम्' (अथर्व० ११।२।१) इत्यादि मन्त्रोंमें द्विवचन बहुवचनमें 'नमस्ते' न आकर 'नमः' ही आया है, सर्वनाम 'वाम्, वः' आदि भिन्न भिन्न आये हैं, इससे स्पष्ट है कि वेदके मतमें 'नमस्ते' ये दो भिन्न पद हैं; एक पद नहीं। और वेदको भिन्न भिन्न अवसर पर भिन्न भिन्न सर्वनाम अपेक्षित है, केवल 'ते' नहीं।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि— 'नमस्ते यातुधानेभ्यो नमस्ते भेषजेभ्यः' (अथर्व० ६।१३।३) 'नमस्ते लाङ्गलेभ्यः' (अ० २।८।४) 'नमस्ते घोषिणीभ्यः नमस्ते केशिनीभ्यः। नमस्ते देव सेनाभ्यः (अ० ११।२।३१) 'नमस्ते अस्तु पश्यत पश्य मा पश्यत' (अ० १३।४।४८) इन मन्त्रोंमें बहुवचनमें 'नमस्ते' आया है; तब स्पष्ट है कि- यह एक पद भी वेदको इष्ट है, नहीं तो यहां 'नमो वः' होता; इसपर निवेदन यह है कि- यहांपर 'बहुवचनमें नमस्ते है' यह भ्रम है; इन मन्त्रोंमें भी एकवचनमें 'नमस्ते' है, यह बात इन्हीं मंत्रोंसे सिद्ध हो रही है।

पहला मन्त्र ही लीजिये- 'नमस्ते यातुधानेभ्यः' इसका उत्तरार्ध है- 'नमस्ते मृत्यो! मूलेभ्यो ब्राह्मणेभ्यः इदं नमः' इस मन्त्रमें सम्बोध्यमान 'मृत्यु' है वह एक वचनान्त है, उसीका पूर्वार्धमें 'ते' इस सर्वनामसे परामर्श आया है कि- हे मृत्यो! ते-तव यातुधानेभ्यः नमः, ते तव भेषजेभ्यो नमः' इस प्रकार जब कि- यहांका 'ते' शब्द एकवचनान्त 'मृत्यु' का परामर्शक है; तो यहां बहुवचनमें 'नमस्ते' का प्रयोग न होकर एकवचनमें प्रयोग सिद्ध हुआ, अतः ये दो पद ही सिद्ध हुए।

अब 'नमस्ते लाङ्गलेभ्यः' इसे लीजिये। इससे पूर्वके 'बभ्रोरर्जुन काण्डस्य यवस्य ते' (अ० २।९।३) इस मन्त्रमें 'ते' यह एकवचनान्त पद रुग्णके लिये आया है। तब उसके सहचारी 'नमस्ते लांगलेभ्यः' इस मन्त्रमें भी 'ते' यह उसी रोगीके लिये आया है- अब अर्थ यह हुआ- हे रोगिन्! ते-त्वदर्थं, त्वद् रोगशान्त्यै लांगलेभ्यो नमः' इसीलिये इस 'ते' का सबके लिये समन्वय करते हुए इस मन्त्रके भी नम पदों तथा मन्त्रमें 'नम ईषायुगेभ्य नमः सनिस्रसाक्षेभ्यः' इस प्रकार बहुवचनमें 'नमः' आया है, 'नमस्ते' नहीं। इससे स्पष्ट है कि- उक्त मन्त्रमें भी बहुवचनमें 'नमस्ते' नहीं, अतः यह एक पद भी नहीं, किन्तु एकवचनमें हैं; अतः ये दो पद हैं। इसी कारण श्री जयदेव, श्री क्षेमकरण, श्री सातवलेकर, आदि भाष्यकारोंने भी यहां 'तेरे हलोंके लिये सत्कार, अथवा 'हलोंके लिये तुझे नमस्कार' इत्यादि रूपमें एकवचनान्त अर्थ ही किया है।

इसी प्रकार तृतीय मन्त्रमें भी 'हे देव! ते-तव घोषिणीभ्य; केशिनीभ्यः सेनाभ्यो नमः' इस प्रकार एकवचनमें ही प्रयोग है। 'ते' यह 'देव' इस एकवचनका सम्बन्धज्ञापक षष्ठ्यन्त पद है। चौथे 'नमस्ते अस्तु पश्यत' इस मन्त्रमें 'पश्यत' यह बहुवचनान्त क्रिया नहीं, किन्तु 'दर्शनीय' इस एकवचनके अर्थवाला सम्बुद्धिपद है। तब इन मन्त्रोंमें बहुवचनमें 'नमस्ते' न होनेसे एकवचनान्त होनेके कारण यह दो पद सिद्ध हुए, एक पद नहीं।

घरौण्डा गुरुकुलके आचार्य श्री स्वामी रामेश्वरानन्दजीने 'नमस्ते-प्रदीप' एक पुस्तक बनाई है। उन्होंने 'नमस्ते' को एक पद भी माना है, दो पद भी। दो पद माननेमें इन्हें

तो इष्टापत्ति है ही। अब 'नमस्ते' को एक पद माननेकी उनकी कसौटी भी दर्शनीय ही है। विद्वानोंको उसपर अवश्य विचार करना चाहिये। उक्त पुस्तकके २० पृष्ठमें प्रश्नोत्तर रूपसे उन्होंने यह लिखा है—

(प्रश्न) यह कैसे जाना जाय कि कहांपर नमस्ते नमः+ ते के योगसे सिद्ध होता है, और कहाँपर नमस्ते यह एक पद अव्यय है?

(उत्तर) जहांपर विशेष्य प्रथमान्त हो वहांपर नमस्ते नमः+ते के योगसे सिद्ध होता है। जहांपर विशेष्य चतुर्थ्यन्त हो वहांपर 'नमस्ते' यह एक पद अव्यय ही होता है।'

यहांपर स्वा० रामेश्वरानन्दजीने 'नमस्ते' के एकपदत्वके उदाहरण तो दिये हैं; जिनपर आगे विचार होगा; पर द्विपदत्वमें प्रथमान्त विशेषताकी हेतुतामें उदाहरण कोई नहीं दिया। पहले इसी कसौटीपर विचार कर फिर उनकी दूसरी कसौटीपर विचार करेंगे। हम पहले कह चुके हैं कि- नमस्तकी द्विपदतामें यहां स्वा० रा० जीने कोई उदाहरण भिन्नतया नहीं दिया। अब उनके पुस्तकके प्रमाण देखने चाहिये, जहाँ उन्होंने 'नमस्ते' को दो पद माना हो। उक्त पुस्तकके ७ वें पृष्ठमें स्वा० रामे० जीने 'वृशक्रावः पशुपते! नमस्ते' (अथर्व० ११।२।९) 'पशुपते! नमस्ते' (अ० ११।२।११) 'मा न क्रुधः पशुपते! नमस्ते' (११।२।१९) ये तीन मन्त्र दिये हैं। इनमें पूर्व मन्त्रका अर्थ उन्होंने लिखा है- हे पश्वादिके पालक प्रभो! ते नमः- आपका सत्कार हो।' दूसरे मन्त्रका भी पूर्ववत् अर्थ होनेसे उन्होंने उसे स्पष्टार्थ माना है। तृतीय मन्त्रका अर्थ उन्होंने किया है- 'हे पशुपते! हमपर क्रोधित मत हो, आपका सत्कार हो' यहां तीनों स्थलोंमें उन्होंने 'नमस्ते' को पद माना है। जहां उनको 'नमस्ते' एक पद इष्ट होता है; वहां वे 'आपको नमस्ते हो' ऐसा अर्थ लिखा करते हैं।

यहां क्या कारण है कि- उन्होंने 'नमस्ते' में दो पद माने हैं? कारण स्पष्ट है- यहां उनकी पहली परिभाषा दर्शनीय है- 'जहांपर विशेष्य प्रथमान्त हो, वहांपर नमस्ते नमः+ते के योगसे सिद्ध होता है'। यहांपर 'पशुपति' सम्बोध्यमान होनेसे विशेष्य है और वह प्रथमान्त है, क्योंकि- सम्बोधनमें प्रथमा विभक्ति हुआ करती है। तब उनकी पूर्व-परिभाषानुसार उक्त मन्त्रोंमें प्रयुक्त 'नमस्ते' द्विपदात्मक हुआ। तभी तो उन्होंने स्पष्ट रूपसे 'ते नमः' ऐसा छेद किया है, और अर्थ भी वैसा ही किया है।

कहीं हम भूल न कर रहे हों, अतः स्वामी रामे० जीका इस प्रकारका अन्य पृष्ठका उदाहरण भी गवेषणीय है। अब उनकी पुस्तकका १८ पृष्ठ देख लेना चाहिये। उसमें उन्होंने 'नमस्ते गन्धर्व' (अ० १४।२।३४) यह मन्त्र दिया है। इसका अर्थ यों दिया है— (गन्धर्व) वेद-वाणीको धारण करनेवाले ब्रह्मचारिन्! (ते) तेरे लिये (नमः) अभिवादन हो।' इससे अत्यन्त स्पष्ट होगया कि-स्वा०रामे० जीके मतानुसार जहां सम्बोधन वा प्रथमान्त हो वहाँपर आया हुआ 'नमस्ते' द्विपदात्मक होता है।

यदि यह उनकी बात ठीक है, तो उन्होंने जितने भी मन्त्र 'नमस्ते' की एकपदतामें दिये हैं, उनमें प्रायः सभीमें प्रतिशत ९९ मन्त्रोंमें कोई सम्बोधनान्त वा प्रथमान्त पद है; तब उन सबमें 'नमस्ते' के दो पद सिद्ध हो जानेसे एकपदता न रही। तब उनमें उसके एकपदत्व सिद्ध न होनेसे उनका सम्पूर्ण परिश्रम अकृत कार्य ही रहता है।

अब उनकी शेष दूसरी परिभाषा 'नमस्ते' को एक पद सिद्ध करनेकी द्रष्टव्य है। उसके उन्होंने उदाहरण भी दिये हैं और उसके लक्षणका सङ्गमन भी सम्यक् दिया है। विद्वान् पाठकोंका अवधान इधर अपेक्षणीय है। स्वा० रामे० जी लिखते हैं— 'जहांपर विशेष्य चतुर्थ्यन्त हो तो वहां पर 'नमस्ते' यह एक पद अव्यय ही होता है। वहां नमः+ ते यह छेद माना जाय, तो चतुर्थ्यन्त पदोंमें चतुर्थी विभक्तिका होना निष्फल है।' अब स्वा० रामे० जीकी परिभाषाका स्वरूप पाठक उन्हींके शब्दोंमें सोदाहरण देखें।

वे लिखते हैं 'नमस्ते विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे' (यजु०) 'नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते' (यजु० ३६। २०) इत्यादि मन्त्रोंमें 'नमस्ते' यह एकपद अव्यय है।' यह कहकर स्वामीजी यहांका समन्वय दिखलाते हैं— 'यदि यहांपर नमः+ते के योगसे नमस्ते सिद्ध होता, तो मंत्रोंमें आये चतुर्थ्यन्त पदोंमें चतुर्थी विभक्तिका होना निष्फल है'। फिर स्वामी रामे० जी इसकी अत्यन्त स्पष्टता करते हैं— 'क्योंकि- जब 'ते' का अर्थ ही 'तेरे लिये

हो जायगा, फिर विशेष्यमें चतुर्थी विभक्तिका होना कोई अर्थ नहीं रखता '। अब वे इसे अपने कहे मन्त्रोंमें घटाते हैं—

' यदि विद्युते, हरसे तथा शोचिषे आदिमें आई हुई चतुर्थीका अर्थ यह किया जाय कि विद्युत्के लिये इत्यादि, तब तो ' नमस्ते ' में आई हुई चतुर्थी विभक्ति ' ते ' का कोई अर्थ नहीं रहता।' फिर इसीका स्पष्टीकरण करते हैं— ' यदि यह कहो कि- ' नमः स्वस्ति-स्वाहा ' इस सूत्रके आधारपर यहां चतुर्थी विभक्ति हुई है, तो हम यह पूछेंगे कि- इस चतुर्थी विभक्तिका अर्थ क्या होगा ? यदि ' लिये ' अर्थ करोगे, तो उक्त दोष (?) आयेंगे। यदि कहो कि- अन्यार्थ करेंगे, तब हम यह पूछेंगे कि- इसमें चतुर्थी विभक्ति करनेका क्या फल है ? यदि कहो कि- यह चतुर्थी विभक्ति निरर्थक है, तब तो वेदपर बड़ा भारी दोष आयेगा, क्योंकि- उसकी तो एकमात्रा भी निरर्थक नहीं है।'

' वैदिक धर्म ' के विद्वान् पाठकोंने स्वामी रामेश्वरानन्दजीकी विवेचना देख ली। इस उनकी मीमांसासे कोई भी विद्वान सहमत न होगा— यह हमारा सुदृढ विश्वास है। आचार्य विश्वश्रवाः जी, तथा ' सार्वदेशिक ' सम्पादक श्रीधर्मदेवजीको हमने यह मीमांसा दिखलाई; इन्होंने इसे व्याकरणाऽनभिज्ञताका फल बताया। ऐसी ऐसी मीमांसा वेदपर सीधा आक्रमण है। ऐसा माननेपर ' नमस्ते जायमानायै, जातायै उत ते नमः ' (अथर्व० १०।१०।१) में ' जातायै ते ' इनमें अन्यतर पदमें चतुर्थी विभक्ति व्यर्थ होगी। इसी प्रकार ' आसीनाय उत ते नमः ' (अथर्व० ११।४।७) में ' आसीनाय ' इस चतुर्थ्यन्तके साथ चतुर्थ्यन्त ' ते ' व्यर्थ हो जावेगा। तब तो ' तस्मै ते काम ! नम इद् कृणोमि ' (अथर्व० ९।२।९) इस मन्त्रमें ' तस्मै ' चतुर्थ्यन्तके साथ ' ते ' यह चतुर्थी व्यर्थ होगी। ' तुभ्यं... अग्ने ! विप्राय ' (ऋ० ३।२१।३) में ' विप्राय ' होनेपर ' तुभ्यं ' यह चतुर्थी व्यर्थ होगी। इसी प्रकार ' महस्वते तुभ्यम् ' (ऋ० ३।३५।७) ' तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ' (अ० ६।२९।३) ' तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये ' (अ० ७।९२।१) ' तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः। (अ० १०।७।३२) ' तस्मै ते नमो अस्तु देवि ! ' (अ० ११।३।७) ' सर्वस्मै ते इदं नमः ' (अ० ११।६।८) ' पराचीनाय ते नमः, प्रतीचीनाय ते नमः ' (अ० ११।४। ८) इत्यादि बहुत मन्त्रोंमें ' ते ' व्यर्थ हो जायगा। और फिर ' यल्लिङ्गं यद् वचनं या च विभक्तिर्विशेष्ये स्यात्। तल्लिंग तद् वचनं सा च विभक्तिर्विशेषणे देया ' इस विशेषण-विशेष्यमें समान विभक्ति होनेके नियमको काटना पड़ेगा।

आगे स्वामी रामेश्वरानन्दजी फिर प्रश्नोत्तर दिखलाते हैं— (प्रश्न) नमस्तेको आजतक किसीने भी एक पद नहीं माना है, केवल आप ही यह हठ करते हैं कि— नमस्ते एक पद भी है।

(उत्तर) हम वेदमन्त्रोंसे यह दिखा चुके हैं कि- नमस्ते एक पद भी है। यदि उक्त मन्त्रोंमें नमः-ते के योगसे नमस्ते शब्द सिद्ध किया जायगा तो कदापि अर्थ संगत नहीं हो सकता। यथा- ' नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्तु अर्चिषे ' (यजुः १७।११) इत्यादि मन्त्रोंमें ' नमः+ते के योगसे ' नमस्ते ' सिद्ध नहीं होता, किन्तु एक पद ही है "।

हम स्वामी रामे० जीके इस मतसे सहमत नहीं कि- उक्त मन्त्रोंमें ' नमस्ते ' को दो पद माननेपर अर्थ संगत नहीं होता। हम आपके कहे मन्त्रोंपर श्री स्वामी दयानन्दजीका भाष्य देते हैं, इसपर स्वा० रामे० जी ही बताएंगे कि क्या असंगति पड़ती है ?

' नमस्ते हरसे ' (यजुः १७।११)- ' नमः-सत्करणं ते-तुभ्यं हरसे- यो दुःखं हरति तस्मै ' हे परमेश्वर ! हरसे-पाप हरण करनेवाले ते-आपके लिये नमः-नमस्कार अस्तु-हो '। ' नमस्ते विद्युते ' (३६।२१) ' नमः ते-तुभ्यं परमेश्वराय अस्तु विद्युते-विद्युदिव अभिव्यापाय, नमः ते भगवन्-अत्यन्तैश्वर्यसम्पन्न ! अस्तु '।

विद्वान् पाठकोंने देखा होगा कि- अर्थमें कोई असंगति नहीं पड़ती, तब इन मन्त्रोंमें ' नमः-ते ' ये दो पद सिद्ध हुए। स्वा० रामेश्वरानन्दजीने जिन मन्त्रोंमें ' नमस्ते ' को एक पद बताया है, उनमें कई मन्त्रोंका स्वा० दयानन्दजीसे प्रोक्त अर्थ देते हैं, पाठकोंको उसमें कोई भी असंगति प्रतीत नहीं होगी— ' शर्म मे यच्छ नमस्ते अस्तु ' (यजुः ४।९) ' ते-तुभ्यं मम नमोस्तु, ते-उस तेरे लिये मेरा अन्नादिपूर्वक सत्कार। ' द्यौष्पितस्ते पिता नमस्ते अस्तु ' (३।६३) भाष्यम्- ' स त्वं मम पितासि, ते-तुभ्यं नमोस्तु '।

' नमस्ते रुद्र ' (११।१) ' नमः— वज्रं ते-तवोपरि । ' ' नमस्ते अस्तु भगवः '(१६।५२) —' नमः-सत्कारः, ते तुभ्यम् अस्तु भगवः—ऐश्वर्यसम्पन्न ! ' ' नमस्ते आयुधाय- ' (यजुः १६।१४) नमः, ते-तुभ्यम् आयुधाय— यः समन्ताद् युध्यते तस्मै । '

सब मन्त्रोंपर स्वामीजीका भाष्य उद्धृत करनेमें विस्तार अधिक होगा। अतः दिङ्मात्र इन्हीं मन्त्रोंको देख लेना चाहिये। जब इस प्रकार वेदमें मन्त्रार्थमें संगति रही है, ' ते ' निरर्थक नहीं रहता, तब ' नमस्ते ' दो ही पद सिद्ध हुए। तब इसको एक पद सिद्ध करना वा एक पदकी तरह ' नमस्ते ' को प्रयुक्त करना वेद वा स्वामीजीके प्रतिकूल है। शेष जो स्वा. रामेश्वरानन्दजीने हिन्दी भाषाके अनुसार ' लिये ' अर्थपर आपत्ति उठाई है कि- ' नमस्ते विद्युते ' में ' तेरे लिये, विद्युत्के लिये नमस्कार ' ऐसा अर्थ लिखना ठीक नहीं लगता, अथवा ' तुझ विद्युत्के लिये नमस्कार ' ऐसा अर्थ करनेपर ' तुझ ' शब्दके साथ ' लिये ' अर्थ न लगनेसे उसमें ' चतुर्थी ' व्यर्थ होती है, यह उनका आन्तरिक आशय ठीक नहीं। संस्कृत भाषामें तो विशेषण-विशेष्योंमें समान विभक्ति लगती है, पर हिन्दी भाषामें यह प्रकार होता है कि- वहां विभक्तिका अर्थ ' को, ने, के लिये से, का, में ' आदि विशेषणोंके साथ न लगाकर विशेष्यके साथ लगा दिया जाता है। उसका सम्बन्ध सब विशेषणोंसे भी लग जाता है, इससे संस्कृतमें विशेषणोंमें विशेष्यकी विभक्ति लगाना व्यर्थ नहीं हो जाता। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

' स आत्मानं सर्वज्ञं मन्यते ' यहांपर ' आत्मानं ' विशेष्य है, ' सर्वज्ञं ' विधेय विशेषण है, दोनोंमें समान विभक्ति है। यहांपर विभक्ति द्वितीया है। हिन्दी भाषामें द्वितीयाका अर्थ ' को ' होता है, पर हिन्दीमें ' वह अपने आपको, सर्वज्ञको, मानता है ' ऐसा अर्थ नहीं करना पड़ता, अर्थात् विशेषण विशेष्य दोनोंके साथ ' को ' को न लगाकर एक विशेष्यके साथ ही उसे लगा देनेसे दोनोंसे उसका सम्बन्ध होजाता है, अर्थात्-यहांपर ' वह अपने आपको सर्वज्ञ मानता है। ऐसा ही अर्थ लिखना पड़ता है। पर हिन्दी भाषामें ' सर्वज्ञ ' विशेषणके साथ ' को ' को न देखकर संस्कृतमें भी उसमें द्वितीया न देकर यहांपर ' स आत्मानं सर्वज्ञो मन्यते ' ऐसा लिख देना व्याकरणानभिज्ञता हो जाती है।

यह हुआ ' द्वितीया ' विभक्तिका उदाहरण, अब चतुर्थीका एक उदाहरण भी देख लेना चाहिये। ' देवाय तुभ्यं (ते) नमः ' यहांपर ' तुभ्यं ' (ते) यह सर्वनाम विशेषण है, ' देवाय ' यह विशेष्य है, ' नमः ' के योगमें चतुर्थी ' नमः स्वस्ति सूत्रसे प्रसिद्ध ही है। तो उसके योगमें ' देवाय ' विशेष्यमें चतुर्थी होनेसे उसके विशेषण ' तुभ्यं ' में चतुर्थी हो ही जाती है। हिन्दी भाषामें इस वाक्यका ' तेरे लिये देवके लिये नमः ' ऐसा अर्थ न करके, पृथक् पृथक् ' लिये ' अर्थ न लगा कर ' तुझ देवके लिये नमस्कार ' इस प्रकार विशेष्यके साथ ही चतुर्थी विभक्तिका अर्थ ' के लिये ' कर दिया जाता है; ऐसा करनेसे दोनोंके साथ वह ' लिये ' अर्थ लग जाता है। पर ' तुझ देवके लिये नमस्कार ' इस हिन्दीके वाक्यमें ' तुझ ' के साथ ' लिये ' न देखकर उसके संस्कृत वाक्य— ' देवाय ते (तुभ्यं) नमः ' में सर्वनाम विशेषणमें चतुर्थी विभक्ति व्यर्थ नहीं होजाती है।

इसी प्रकार ' नमस्ते विद्युते ' इस संस्कृत वाक्यका हिन्दीमें ' तेरे लिये, विद्युत्के लिये नमस्कार ' ऐसा अर्थ न करके ' तुझ विद्युत्के लिये नमस्कार ' ऐसा अर्थ किया जाता है। इस हिन्दी वाक्यमें ' विद्युत् ' शब्दके साथ ' के लिये ' अर्थ देखकर संस्कृतमें ' विद्युते ' इस प्रकार चतुर्थी दे दी जाय; उसके सर्वनाम विशेषण ' तुझ ' में ' के लिये ' यह अर्थ साक्षात् न देखकर संस्कृतमें उसे चतुर्थी न दी जाय, अथवा संस्कृतमें दी हुई ' विद्युते ते नमः ' में ' ते ' की चतुर्थी ' निरर्थक ' मान ली जाय; तब इसमें उस संस्कृत वाक्य प्रयोक्ताका दोष न मानकर उसमें निरर्थकता माननेवालेकी व्याकरणानभिज्ञताका ही दोष मानना पड़ेगा; नहीं तो फिर ' जाताय उत ते नमः ' (अथर्व० १०।१०।१) में ' जाताय ' में चतुर्थी होनेपर ' तुझ उत्पन्न हुईके लिये नमस्कार ' इस अर्थमें ' ते ' की चतुर्थी ' आसीनाय उत ते नमः ' (अथर्व० ११।४।७) ' तुम बैठे हुएके लिये नमस्कार ' इस अर्थमें ' आसीनाय ' इस चतुर्थीकी विद्यमानतामें ' ते ' इस सर्वनामकी चतुर्थी भी निरर्थक हो जायगी। यदि इस ' ते ' की चतुर्थी

निरर्थक नहीं है तो 'नमस्ते अस्तु विद्युते' (यजुर्वेद ३६।२१) 'विद्युते ते- तुभ्यं नमः' 'तुझ विद्युत्‌के लिये 'नमस्कार' यहां पर 'ते' की चतुर्थी भी निरर्थक नहीं है। जब निरर्थक नहीं है, तो उस निरर्थकताके बचावके लिए ही 'नमस्ते' को एक पद मानना स्वयं निरर्थक हो जायगा, क्योंकि- वही अर्थ 'नमः' से ही निकल जानेसे 'ते' स्वयं निरर्थक सिद्ध हो जाएगा। इस प्रकार 'नमस्ते' को वेदमें एक पद बतानेकी कल्पना करना वेदमें निरर्थकताको स्वयम् आह्वान देना है— और इसे एक पद मानने पर वहां अपेक्षित युष्मद् आदि, सर्वनाम न रहनेसे न्यूनपद दोष भी उपस्थित हो जायगा। यह सब स्पष्ट सिद्ध होगया; विद्वान् पाठकोंने यह समझ लिया होगा।

अब इसमें माधवभट्टकी निपातानुक्रमणिकामें 'अथो यदि नमस्तेमी चत्वारिंशदुदाहृताः' इस पद्यमें 'नमस्ते' के निपात होजानेका जो भ्रम होता है, उसका भी समाधान होगया। यहां अन्तिम निपात 'नमस्ते' नहीं है, किन्तु 'नमस्' है, यहांपर 'ते' तो तद् शब्दका प्रथमाका बहुवचन है, उस 'ते' सर्वनामका 'अमी' सर्वनामसे सम्बन्ध है। अब अन्वय यों हुआ— 'अथो, यदि, नमस्-तेऽमी=ते-प्रसिद्धाः, अमी- निर्दिष्टाः खल्वाद्यो निपाताः चत्वारिंशद् उदाहृताः' यहांपर 'तेऽमी' का अर्थ है- 'वे यह'। 'ते अमी' इन दो सर्वनामोंका प्रयोग यहां इस प्रकार है जैसे कि— 'तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये' (नीतिशतक ७५) इस भर्तृहरिके पद्यमें दिया गया है, अथवा 'य इत् तद् विदुः, ते अमी समासते' (अथर्व० ९।१५ (१०) ।१८) इस वेद-मन्त्रके 'ते अमी' की तरह श्रीमाधवभट्टका भी दो सर्वनामोंका प्रयोग है। 'नमस्–तेऽमी' ऐसी स्थितिमें 'अज्झीनं परेण संयोज्यम्' इस न्यायसे उक्त पद्यमें 'नमस्तेऽमी' यह सन्धि बन गई है, इससे 'नमस्ते' एक पद नहीं हो जाता। निपातोंमें 'नमस्' की गणना तो सर्वत्र आई है जैसे कि- स्वा० दयानन्दजीने भी अपने 'वेदांगप्रकाश' के नवम भाग 'अव्ययार्थ' के १३ पृष्ठमें 'नमस्-नतावर्थे, 'नमस्कुर्यान्मातरम्' यह लिखा है। माधवभट्टने भी अपने वेदभाष्यमें कहीं भी नमस्तेको निपात या एक पद नहीं लिखा। यदि यह एक पद निपात होता; तो वेदमें 'नमो वः' (यजु २।३२) इस बहुवचनके प्रयोगमें तथा 'नमो वाम्' (अथर्व० ११।२।२) इस द्विवचनके प्रयोगमें भी 'नमस्ते' ही होता। फिर 'नमोस्तु ते' (अथर्व० ६।१३।१) तथा (महा० भीष्म-पर्व ५९।९६) इत्यादि स्थलोंमें 'नमः-ते' में 'अस्तु' का व्यवधान न होता। इससे स्पष्ट है कि- 'नमस्ते' को एक पद समझना वा एक पद रूपमें उसका प्रयोग करना वेद विरुद्ध भारी भूल है। दो पद मानकर भी उसका प्रयोग वहां करना चाहिये जहाँ माननीयको युष्मद्‌का एक-वचन सब विभक्तियोंमें दिया जाता हो। दो तथा बहुतोंके सामने तथा आदरार्थ बहुवचनमें इसका प्रयोग वेदसे प्रतिकूल है। आशा है-वैदिक विद्वान् इसपर अवश्य विचार करके इसके प्रयोगकी भूलोंको दूर करवा देंगे। एक यह बात भी स्मर्तव्य है कि— 'नमः' का अर्थ अभिवादन-नमस्कार होता है, आशीर्वाद एवं प्रत्यभिवादन नहीं। इसमें स्वा० दयानन्दजीका अभिमत यह है— 'नमस्ते' यह वेदोक्त वाक्य अभिवादन के लिये… है,… इसी वाक्यसे परस्पर वन्दन करें' (सं० वि. १०५। ६० की टिप्पणी) 'नमस्ते इस वाक्यसे परस्पर नमकार करे (सं. वि. पृ. १३३)। वेदमें भी कहा है- 'वन्दध्यै नमोभिः' (ऋ० १।२७।१) यहां भी 'नमः' से वन्दना मानी है। 'वदि अभिवादनस्तुत्योः' यह धातु अभिवादन अर्थमें है, 'नमसा विधेम' (ऋ० १।११४।२) 'नमसाऽ इमेभि' (१।१७१।१) 'नमसा… सपर्यन्ति' (१।९४। १२) इत्यादि वैदिक स्थलोंमें 'नमः' शब्दसे मान्यकी पूजा मानी गई है। तब आशीर्वादमें भी इस शब्दका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

संस्कृत भाषा प्रचार समिति

(स्वाध्याय मण्डल द्वारा संचालित)

प्रमाणित प्रचारक नियमावली

उद्देश्य— प्रचारकार्यको व्यवस्थित बनाने, प्रचारकोंके बीच पारस्परिक परिचय तथा भ्रातृभाव बढाने और समिति तथा प्रचारकोंके बीच स्थायी और घनिष्ठ सम्बन्ध उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे संस्कृत भाषा-प्रचार समिति किल्ला पारडी (सूरत) अपने कार्यक्षेत्रमें संस्कृत भाषा-प्रचार करनेवालोंकी एक सूची रखेगी। इस सूचीमें उन्हींके नाम अङ्कित होंगे, जिन्हे समिति प्रमाणित करेगी कि वे संस्कृत भाषा प्रचार समिति पारडीकी परीक्षाओंके लिये परीक्षार्थी तैयार कर सकते हैं।

नियम-बन्धन— वे सभी प्रचारक प्रमाणित किये जा सकेंगे जो २२ वर्षसे कम आयुके न हों और जो संस्कृत भाषा प्रचार समिति पारडीकी ' संस्कृत-विशारद, ' गव्हर्नमेन्ट संस्कृत कॉलेज बनारसकी मध्यमा, जयपुर या कलकत्ताकी मध्यमा, गुरुकुलोंकी पदवी परीक्षा उत्तीर्ण होचुके हों और जिन्हें कमसे कम एक वर्षके प्रचार कार्यका अनुभव हो। विशेष परिस्थितिमें इन नियम-बन्धनोंमें न आनेवाले सज्जनोंको भी प्रमाणित करनेका अधिकार परीक्षा समितिको रहेगा।

आवेदन-पत्र और प्रमाण-पत्र— सूचीमें अपना नाम अङ्कित करानेके लिये केन्द्रीय कार्यालय पारडीके पास सीधे आवेदन-पत्र भेजना चाहिए। आवेदन पत्रके छपे हुए फार्म केन्द्रीय कार्यालयसे मिल सकेंगे।

आवेदन-पत्र स्वीकृत होनेपर प्रचारकका नाम सूचीमें लिख लिया जाएगा और प्रचारकके पास एक प्रमाण-पत्र भेजा जाएगा।

शुल्क— आवेदन-पत्रके साथ रु. १) शुल्क भेजना आवश्यक है जिसके बिना आवेदन-पत्र पर विचार न हो सकेगा।

कर्तव्य— १- प्रत्येक प्रचारकसे यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह प्रचारकार्यमें सक्रिय भाग ले। पूर्वप्रचलित वर्गोंमें संस्कृत भाषाकी शिक्षा देना, नये वर्ग खोलना, नये केन्द्र खुलवाना, संस्कृत भाषाके पुस्तकालय एवं वाचनालय खोलना तथा उनकी व्यवस्था करना आदि प्रचार कार्यके अन्तर्गत समझे जायँगे।

२- परीक्षाओंके लिये परीक्षार्थियोंके आवेदन-पत्र भेजनेके पश्चात् ही प्रमाणित प्रचारक अपने प्रचार एवं शिक्षण-कार्यका विवरण, छपे हुए पत्रकपर भरकर केन्द्रीय कार्यालयको भेज दिया करेंगे। कार्य-विवरण-पत्रक केन्द्रीय कार्यालयसे मिल सकेगा।

३- प्रत्येक प्रमाणित प्रचारकसे आशा की जाती है कि वे अपनी संस्कृत-भाषा-प्रचार-सम्बन्धी योग्यतां बढाते रहेंगे।

४- संस्कृत भाषा प्रचारकोंसे यह आशा रखी जायगी कि वे स्थानीय केन्द्रव्यवस्थापकको सहयोग देते रहें, केन्द्रीय समितिकी योजनाओंको सफल बनानेका प्रयत्न करते रहें और समय समयपर बननेवाले नियमोंका पालन करें।

सुविधायें—

१- समितिकी परीक्षाओंके प्रश्नपत्रोंकी एक एक प्रति भेजी जायगी।

२- प्रमाणित प्रचारकों द्वारा अनुमोदित आवेदन-पत्रोंको परीक्षा-विभाग स्वीकृत करेगा। ऐसे आवेदन-पत्र केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा ही भेजे जावें।

३- साधारणतः प्रमाणित प्रचारक समितिकी परीक्षाओंके परीक्षक बनाये जायँगे।

४- पाठ्य पुस्तकोंपर २५ ०/० पचीस प्रतिशत कमिशन पुस्तकबिक्री विभाग द्वारा दिया जायगा।

जो प्रचारक संस्कृत भाषाके प्रचारकार्यमें सक्रिय भाग न लेंगे और जिनके कार्य-विवरण केन्द्रीय कार्यालय न पहुँचेंगे वे परीक्षा समिति द्वारा प्राप्त होनेवाली सुविधाओंसे वंचित रहेंगे।

संयोजक

किल्ला पारडी (सूरत) संस्कृत भाषा प्रचार समिति

ॐ

सप्त व्याहृति

गुप्तसंकेतके सात शब्द

मनुष्यको सावध और दक्ष रखनेके लिये संकेतके गुप्त शब्द अथवा वाक्य दिये जाते हैं, जिनको स्मरण करके मनुष्य दक्ष रहता है और अपना कर्तव्यपालन करनेमें प्रमाद नहीं करता। युद्धके समय " यह मनुष्य अपने पक्षका निश्चयसे है, " यह जाननेके लिये 'संकेतके शब्द ' देनेकी परिपाटी है। प्रायः सर्वत्र यह पद्धति है और युद्ध के समय संकेत शब्दसे ही स्वपक्ष-परपक्षका मनुष्य पहचाना जाता है।

परदेशमें जानेके समय घरके तथा समीपके संबंधी अपना स्मरण रहे इसलिये कुछ पदार्थ अथवा संकेतके शब्द अंकित किया वस्त्र उसको देते हैं। जिसको देखनेसे उस प्रवासीको उस मित्रका अथवा उसके संकेतके कार्यका स्मरण होता है और प्रमाद न करता हुआ वह सूचित इष्ट कार्य करता है।

इस तरह मनुष्यके व्यवहारमें संकेतके शब्दोंका बडा महत्त्व रहता है। नामजप, ईश्वरके नामोंका स्मरण भी इसी तरह मनुष्योंको अपने कर्तव्योंका स्मरण करा देता है। यद्यपि आज कल जो लोग नामजप करते हैं, वे उस नामसे सूचित होनेवाला बोध लेनेका यत्न भी नहीं करते, तथापि जो नाम जपनेके लिये लिया जाता है, वह कुछ न कुछ संदेश देता ही है। जैसा देखिये—

१ गोपाल – गोपालनका संदेश देता है,

२ राम – जनताको आनन्द देनेका संदेश देता है,

३ नारायण – लोगोंके पास जाकर उनका सुखदुःख देखनेका और उनके दुःख दूर करनेके लिये अपना कर्तव्य करनेका उपदेश देता है,

४ गोविंद – गो नाम इन्द्रियोंको स्वाधीन रखनेका आदेश देता है,

५ पुरुषोत्तम – पुरुषोंमें अत्यंत श्रेष्ठ पुरुष बननेका प्रयत्न करनेकी सूचना देता है।

इस तरह नाम जप मानवी उन्नतिका –वैयक्तिक, सामाजिक, और राष्ट्रीय– कार्यक्रम बताता है। इस तरह ये ईश्वरके नाम मानवी उन्नतिका परिपूर्ण कार्यक्रम मनुष्यको बताते हैं, मानवी उन्नतिके अनुष्ठानका संकेत करते हैं, मनुष्यको दक्षतासे अपना कर्तव्य करनेकी सूचना देते हैं। इस समय नामजप करनेवाले मनुष्य इस सूचनाकी ओर ध्यान नहीं देते, यह इनका दोष है। यदि ध्यान देंगे तो ये ईश्वरके नाम मनुष्यका तारण करेंगे, इसमें संदेह नहीं है। साधकोंको नामसे सूचित होनेवाला कार्यक्रम तत्परतासे अनुष्ठान करनेके लिये तैयार रहना चाहिये।

इस तरह वैदिक धर्म ' संकेतमय धर्म ' है। यज्ञोपवीतके तीन धागे, प्रत्येक धागेमें तीन सूत्र, ओंकारके तीन अक्षर, गायत्री मंत्रके तीन पाद और २४ अक्षर, इस तरह सैंकडों गुप्तसंकेत हैं। ये सब जानने चाहिये और इनका अनुष्ठान करना चाहिये। आज इस लेखमें ' सात व्याहृतियों ' का विचार करना है और देखना है कि ये किस तरह मानवी उन्नतिका संकेत करते हैं और किस अनुष्ठानकी सूचना देते हैं।

' व्याहृति ' का अर्थ

' व्याहृति ' पद ' वि+आ-हृ ' धातुसे बना है। व्याहृ (वि+आ+हृ) = धातुका अर्थ ' बोलना, कहना, घोषणा करना, पुकार करके कहना, गुप्तसंकेतकी बात सूचित करना, स्पष्टीकरण करना, प्रश्नका उत्तर देना, समझा देना ' ऐसा होता है। इस अर्थ को देखनेसे ' व्याहृति ' का अर्थ – ' शब्द, कथन, भाषण, संकेतका भाषण, घोषणा, गुप्त संकेतका शब्द, गूढ अर्थका शब्द, गुप्तभावकी सूचना देनेवाला शब्द ' ऐसा होता है।

ये व्याहृतिके शब्द सात हैं। जो ये हैं– 'भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं '। सात व्याहृतियां ये हैं। इनमें गुप्त संकेतका अर्थ भरा है। ये सात संकेतके पद मनुष्यको दक्ष और सावधान बननेकी सूचना देते हैं।

तीन महाव्याहृतियाँ

इन सात व्याहृतियोंमें ' तीन महाव्याहृतियाँ ' हैं, उनके नाम ' भूः, भुवः, स्वः ' हैं, इनसे पृथक् शेष चार व्याहृतियाँ हैं। इनका विवरण अब देखिये। इनमेंसे एक एकका भाव अब देखिये—

भूः

' भू सत्तायां ' इस धातुसे ' भू ' की उत्पत्ति है, इसलिये इसका अर्थ ' सत्ता, अस्तित्व, होना, अपनी विद्यमानता ' यह है। अपना ' अस्तित्व ' रखनेके लिये प्रथम प्रयत्न होना चाहिये, यह सूचना इस ' भूः ' से मिलती है। ' भू. ' के अर्थ अब देखिये—

' भूः '– १ होना बनना, २ जन्म लेना, उत्पन्न करना और उत्पन्न होना; ३ उद्भव होना, उत्पत्ति होना; ४ (जीवित) रहना, होना, अस्तित्वमें आना; ५ (प्राणयुक्त) होना, (श्वास) लेते रहना; ६ रहना; ७ काममें आना; ८ (शक्त) होना; ९ (संचालक) होना; १० (सहायक) होना; ११ व्यवहार करना; १२ (अभ्युदय युक्त) होना, (यशस्वी) होना; इत्यादि अर्थ इस धातुके होते हैं, इस लिये इस ' भूः ' पदके भी वेही यौगिक अर्थ हैं। इतने अर्थोंमें इस ' भू ' धातुका तथा ' भूः ' पद का भाषामें व्यवहार होता है।

ये अर्थ वेदमंत्रोंमें भी इस धातुके हम देख सकते हैं अर्थात् वेदमंत्रोंमें इन अर्थोंके सूचक पद भी प्रयुक्त हुए हैं। देखिये—

१ मा पणिर्भूः। ऋ० १।३३।३
२ ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः। १।५२।१३
३ क्रतुभिः सुक्रतुर्भूः। ऋ. १।९१।२
दक्षैः सुदक्षः ,,
४ त्वं त्राता... वृधे भूः। १।१७८।५
५ भवा शास्त्री भूः। १।१८९।७
६ त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः। ३।१।५
७ त्वं दशस्यावृको वृधो भूः। ३।१५।३
८ त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूः। ३।२०।११
९ सखा विश्वायुरविता वृधे भूः। ३।३३।३
१० मंहना दशांता भूः। ६।३४।५
११ शिवो भूः। ७।१९।१०
१२ अभि क्रत्वेन्द्र भूः। ७।२१।६
१३ माकिर्देवानामप भूः। १०।११।९
१४ प्रभूः जयन्तं। १०।४६।५
१५ भूर्जज्ञाः। १०।७२।४
१६ आतो भूः। १०।१४९।२

ऋग्वेदके इतने मंत्रोंमें ' भूः ' का प्रयोग है। वैसे तो भू धातुके प्रयोग सहस्रों मंत्रोंमें हैं, पर ' भूः ' ऐसा शब्द-प्रयोग इन मंत्रोंमें है। अब इस भूः पदके सहचारी पदोंका संबंध देखकर अर्थ देखिये (१) तू कृपण न बन, (२) तू इस संपूर्ण विश्वका अधिपति हो, (३) तू अपने शुभ कर्मोंसे कर्तृत्ववान् और बलोंसे बलवान् हुआ है, (४) तू हमारा संरक्षक और उत्कर्ष करनेवाला है, (५) तू मानवोंके लिये सुशिक्षण देता है, (६) तू सबका तारक और उत्साह बढानेवाला है; (७) तू सबका संवर्धक है, (८) तू पुराणपुरुष है, वैभव बढानेवाला है, (९) तू सबका मित्र, संरक्षक, पूर्णायु और उत्कर्ष करनेवाला है, (१०) तू धन देनेवाला और देखनेमें मनोहर है, (११) तू कल्याण करनेवाला है, (१२) तू शत्रुका पराभव करता है, (१३) यहांसे देव दूर न हों ऐसा कर, (१४) तू विजयी और सब पर प्रभाव डालनेवाला हो, (१५) भूमि उत्पन्न हो गई (१६) इससे भू उत्पन्न हुई है।

इन मंत्रोंमें केवल एक दो मंत्रोंमें ही ' भूः ' का अर्थ पृथ्वी है और अन्य मंत्रोंमें ' भूः ' पद क्रियावाचक है। भूमि भी हम सबके अस्तित्वका आधार है और अन्य मंत्रोंमें जो अस्तित्ववाचक ' भूः ' (है) पद है, वह अस्तित्व-दर्शक तो है, पर वह सर्वत्र उत्कर्ष, वैभव, वृद्धि, अभ्युदय, तारण, बल, आधिपत्य आदि श्रेष्ठ शुभगुणोंका साहचर्य करता है। यह केवल अस्तित्व मात्र नहीं है, हीन दर्जेका अस्तित्व नहीं है, गिरनेवाला अस्तित्व नहीं, अधःपतनकी सूचना इसमें नहीं है। मैं क्षुद्र पदार्थ हूं, मैं तुच्छ हीन दीन हूं, मैं क्षणभंगुर हूं, मैं नाशवान हूं, ऐसा भाव यहां नहीं

है। प्रत्युत यहां का अस्तित्व तारक, दुःखनाशक, उद्धारक, धनधान्यबलका संवर्धक, यश बढानेवाला है, प्रभुत्व स्थापित करनेवाला विजयी अस्तित्व है। वेद हीन-दीनता-का भाव बोलता ही नहीं, यह भाव तो शत्रुके पास रहे। हमारे पास ' अदीन अस्तित्व ' रहना चाहिये।

अपना सामर्थ्यशाली अस्तित्व

' भूः ' का अर्थ ' अस्तित्व, स्थिति, रहना, होना ' ऐसा है, पर यह सामर्थ्यवान, विजयी, प्रतापी, यशस्वी, प्रभुत्व-स्थापक अस्तित्व है यह ध्यानमें धरने योग्य है। ' अस्तित्व' ही सब व्यवहारका आधार है। हमें सबसे प्रथम अपने अस्तित्वको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न करना चाहिये। यदि कोई शत्रु हमारे अस्तित्व पर ही आक्रमण करेगा, तो उसको नष्टभ्रष्ट करना हमारा आवश्यक कर्तव्य ही होगा। हमारे सब प्रकारके व्यवहारोंका मूलाधार हमारा अस्तित्व है। यदि हमारा अस्तित्व ही नष्ट हुआ, तो बाकी सभी बातें हमारे लिये व्यर्थ हो जायगी। इसलिये इन सात गुप्त संकेतके शब्दोंमें प्रथम ' भूः ' अपना अस्तित्व चिरस्थायी रखो ऐसा आदेश प्रत्येक वैदिकधर्मीको दे रहा है।

पाठक विचार करके देखें कि अपना अस्तित्व न रहा तो फिर क्या है ? सर्वशून्य ही हो जायगा। वैदिक धर्म ' शून्यवाद ' का प्रतिपादन नहीं करता, वह 'सत्तावाद' अथवा 'प्रभुत्ववाद ' का प्रतिपादन करता है।

इस तरह ' भूः ' का विचार करके हमने देखा कि हमारा अस्तित्व स्थायी रखनेका संदेश यह पद दे रहा है। तथा पूर्वोक्त वेदके मंत्र अस्तित्व के साथ रहनेवाले सहचारी पदोंसे यह बता रहे हैं कि, वह ' हमारा अस्तित्व ऐश्वर्य, प्रभुत्व तथा वैभवसे अलंकृत होना चाहिये।' मनुष्यका प्रयत्न अपना अस्तित्व वैभवयुक्त करनेके लिये होना चाहिये, यह भाव इस विवरणका है। ' भूः ' से यह अनुष्ठान मनुष्यके लिये सूचित होता है। और भी देखिये -

भूः हीयं (पृथिवी) श. ब्रा. ७।१।१।७
स (प्रजापतिः) भूरित्येव ऋग्वेदस्य रसमादत्त।
जै० उ० १।१।३

भूरिति ऋग्भ्योऽक्षरत्। ष० १।५
स भूरिति व्याहरत्। तै० २।२।४।२

भूरिति वा अयं लोकः। श. ८।१।४।१२
भूरिति वै प्रजापतिः। आत्मानमजनयत्
श. ब्रा. २।१।४।१३

' भूः ' यह पृथिवी है। भूः यह ऋग्वेदका सार है, वह ऋग्वेदसे निकल कर बाहर आया है। भूः यह प्रजापालन करनेवाला है। वह अपने आपको उत्पन्न करता है और प्रजापतिके स्थानमें स्थापन करता है।

'भूः ' ऋग्वेदसे किस तरह और किन् मन्त्रोंसे प्रकट हुआ है यह ऊपर बताया है। इस ' भूः ' के विषयमें निम्नलिखित वचन देखिये—

भूरिति ऋग्भ्य. । छां० उ० ४।१७।२
भूः स्वाहा। छां० ४।१७।४, बृ० ६।३।२
भूरिति वा अयं लोकः। तै० १।५।१
भूरिति वा अग्निः। तै० १।५।२
भूरिति वा ऋचः। तै० १।५।२
भूरिति वै प्राणः। तै० १।५।३
भूः पादाः। मैत्री ६।५
भूस्ते आदिः। शिर० १
पुरुषस्तस्य भूरिति शिरः। बृ० ५।५।३

' भूः यह ऋग्वेदमन्त्रोंका सार है, भू पृथिवीका नाम है। भूः का अर्थ अग्नि है। भूः का अर्थ ऋग्वेदके मंत्र है। भूः का अर्थ प्राण है। भूः सबका आधाररूप पांव है। भूः सबका आदि है। आत्मारूपी पुरुषका सिर भूः है। भूः का उच्चारण करके स्वाहा किया जाता है। ' यह भूः के विषयमें उपनिषदोंमें कहा है। इससे भूः का महत्व समझमें आ सकता है। ऋग्वेदके मंत्रोंका सार भू है। अपने अस्तित्वके लिये जो करना आवश्यक है वह शुभ कर्म करना चाहिये, ऐसा भू व्याहृति द्वारा सूचित होता है। तथा और देखो—

भूरन्नं अग्नये पृथिव्यै स्वाहा। महाना. ७।१
भूश्च नारायणः। ना. उ. ता. १।५

'भूः ' का अर्थ अन्न है और नारायण, अर्थात् परात्पर पुरुष ऐसा भी उसका अर्थ है, भू से अन्नका बोध होता है जो सबके जीवनके लिये मुख्य वस्तु है। वैसा ही परमेश्वर भी इस भू का अर्थ है जो सबका आधार है और

स्वयंसिद्ध है। ईश्वर ही स्वतःसिद्ध अस्तित्ववान् है जिसके अस्तित्वसे सब विश्व अस्तित्ववान् हुआ है।

इस तरह 'भूः' का अर्थ 'अस्तित्व' है और शेष इसके अर्थ अस्तित्वके सहायक होनेवाले हैं। अपना अस्तित्व रखनेके लिये मनुष्योंको प्रयत्न करना चाहिये यह इसका तात्पर्य है। अब दूसरी व्याहृति 'भुवः' है।

भुवः

दूसरी व्याहृति 'भुवः' है। 'भुवः' का अर्थ— 'भु-वर्' भु नाम पृथ्वीके ऊपर श्रेष्ठ होना है, जो पृथ्वी पर अपना अस्तित्व है वह अधिक श्रेष्ठ बनाना। अपना जीवन श्रेष्ठ बनाना। अपनी वरिष्ठता प्रस्थापित करना। अपनेमें जो दीन हीनताका भाव है, उसको दूर करके अपने अन्दर श्रेष्ठत्व लाना और उसको बढाना। 'भुव,' का अर्थ 'अग्नि तथा पृथ्वी' है। अग्नि ज्ञानका देव है। अग्नि ज्ञान देता है, प्रकाश देता है, मार्ग दर्शाता है, अन्तिम सिद्धितक पहुंचाता है। ये गुण अग्निके अन्दर हैं। प्रकाश दर्शानेका अर्थही मार्गदर्शन करना है। ये सब ज्ञान के गुण हैं। ज्ञानी अपने ज्ञानसे लोगोंका मार्गदर्शन करता है, लोगोंको सन्मार्गसे चलाता है, अन्तिम सिद्धितक पहुंचाता है। अन्धेरी रात्रीमें अग्नि, अथवा दीप जो मार्ग-दर्शन करता है, वह ज्ञानका कार्य है। वही 'भुवः' पदसे यहां सूचित किया है। 'भुव् अवकल्पने' यह धातु है। अवकल्पनका अर्थ ज्ञान और ज्ञानसे उत्पन्न होनेवाली कल्पना है। मनुष्यको यही ज्ञान उठाता है और तारता है। इस लिये अस्तित्वके पश्चात् ज्ञान प्राप्त करनेकी सूचना यहां दी है।

केवल "पशुसमान अस्तित्व" नहीं चाहिये, परंतु अस्तित्वमें यशपूर्ण वैभव प्राप्त करनेके लिये ज्ञान भी चाहिये, यह भाव यहां प्रकट हुआ है। 'भुवः' के विषयमें उपनिषदोंमें क्या कहा है, सो अब देखिये—

भुव इति यजुर्भ्यः। छां० ४।१७।१
भुव इति बाहू। बृ० ५।५।३
भुव इत्यन्तरिक्षम्।
भुव इति वायुः।
भुव इति सामानि। भुव इत्यपानः। तै० १।५।१
नाभिर्भुवः। मैत्री० ६।५
भुवोऽन्नं वायवे। महा. ना. ७।२
मध्यं भुवः। शिरस् २
यो वै रुद्रः। यश्च भुवः। शिरस् २
भुवो लोकस्तु जानुनोः। नाद १

(भुवः) व्याहृतिका ऐसा स्पष्टीकरण उपनिषदोंमें मिलता है। इसका भाव यह है- " भुवः यह यजुर्वेदका सार है, यजुर्वेदके मंत्रोंसे भुवः व्याहृती उत्पन्न हुई है। भुवः ये बाहू हैं, जैसे शरीरमें बाहू कार्य करते हैं वैसी भुवः यह व्याहृती कर्मशक्ति की सूचक है। पृथ्वीके ऊपर जैसा अन्तरिक्ष है वैसी भू व्याहृती पर भुवः व्याहृतीका उच्च स्थान है। भुवः यह प्राण है, प्राणके समान इसका महत्व है। शरीरमें प्राणका जैसा महत्त्व है वैसा भुवः का जीवनमें महत्त्व है। भुवः यह सामगानकी सूचक व्याहृती है। जिस तरह मंत्रकी शोभा सामगानके आला-पोंसे बढती है उस तरह भू नाम अस्तित्वकी-जीवनकी शोभा भुवः नाम ज्ञानमय कर्तृत्वसे बढती है। भुवः यह जीवनका महत्व है। भुवः यह जीवन व्यवहारका मध्य है, जिस तरह शरीरके मध्यमें नाभी होती है। भुवः से अन्नका बोध होता है, जैसा जीवनके लिये अन्न सहायक है, वैसा ही भुवः व्याहृतिसे बोधित होनेवाला ज्ञानपूर्वक कर्म मानवी अस्तित्वकी सुंदरता बढानेकी सहायता करता है। जो रुद्र है, जो शत्रुका संहार करनेवाला देव है, वही भुवः की शक्ति है। ज्ञानपूर्वक कर्म करनेसे ही शत्रु दूर हो सकते हैं। इस तरह भुवः का भाव उपनिषदोंमें वर्णन किया है। यह अत्यंत मननीय है। यह 'भुवः' व्याहृति यजुर्वेदके मंत्रोंसे प्रकट हुई है ऐसा 'भुव इति यजुर्भ्यः'। छां० ४।१७।१ में कहा है। इसके सूचक यजुर्वेदके मंत्र अब देखिये—

अयं पुरो भुवः, तस्य प्राणो भौवायनो,
वसन्तः प्राणायनो, गायत्री वासन्ती।
वा० यजु० १३।५४

'यह सामने भुवः है, इससे प्राण उत्पन्न हुआ, प्राणसे वसन्त हुआ और वसन्तसे गायत्री छन्द उत्पन्न हुआ है।' तथा—

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः
सचसे शिवाभिः। दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां
जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥

वा० य० १३।१५; १५।२३

'तू यज्ञका और रजोलोकका नेता होता है जिस समय कल्याण करनेवाली ज्वालाओंसे तू युक्त होता है, द्युलोकमें तूं सूर्यका धारण करता है, यज्ञमें हव्यका वहन करता है।'

प्राण शक्ति, वसन्त ऋतुका सौंदर्य और गायत्री मन्त्रका महत्त्व यह सब जो 'पुरो भुवः' जो अग्रगामी रहता है, जो नेता होता है उसका वैभव है। यह अन्तरिक्ष लोकका तथा यज्ञका नेता है। रजोलोक ही भुवर्लोक है। यह यज्ञस्थान और सब मानवी हलचलका स्थान है। सब प्रकारके प्रयत्नोंका प्रतीक यज्ञ है। इसलिये इससे पूर्व भुवः का आशय 'ज्ञानपूर्वक किया कर्म' किया है। भुवः का अर्थ यह है।

मनुष्य अपना (भूः) अस्तित्व स्थायीरूपसे रखनेका प्रयत्न करे परंतु उसको उसके साथ साथ (भुवः) ज्ञानपूर्वक कर्म अवश्यमेव करना चाहिये। वस्तुतः 'भू' धातुसे ही 'भू भुवः' ये दोनों पद बने हैं, इसलिये इन दोनोंका भाव 'वैभवयुक्त होकर रहना' है। यह ज्ञानपूर्वक किये कर्मोंसे ही हो सकता है, किसी दूसरे यत्नसे नहीं होगा। अपना अस्तित्व स्थायीभावसे टिकानेका उपदेश भू व्याहृतिसे बोधित होता है और उस अपने स्थायी अस्तित्वको ज्ञानपूर्वक किये शुभ कर्मोंसे आनन्दमय बनानेका साध्य द्वितीय 'भुवः' इस व्याहृतीसे सूचित होता है। इस तरह हम अपना अस्तित्व स्थायी रहनेका प्रयत्न करेंगे और उस हमारे जीवनको आनन्दप्रसन्न करनेका भी प्रयत्न साथ साथ करेंगे।

यहां एक बडी शंका उपस्थित होती है, वह यह कि किसीका भी अस्तित्व (सत्ता) स्थायी नहीं होती। यहां इस भूमिपर जो उत्पन्न होते हैं वे मरते हैं, इसलिये कहा है—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः
ध्रुवं जन्म मृतस्य च ॥ भ० गीता. २

'जो जन्मा है उसका मृत्यु निश्चित है और जो मरा है उसका जन्म भी निश्चित है।' यदि यह सत्य है तो इसीसे अपना अस्तित्व टिकानेकी सभावना विदित हो सकती है। क्योंकि इस वचनमें कहा है कि जो मरता है उसको जन्म निश्चित है। जैसा जागता है उसको सोना आवश्यक है और जो सोता है उसको जागना आवश्यक है। यहां जागना और सोना जीवन मरणके सदृश समझिये। कोई जागनेवाला निद्रामें अपना नाश हुआ ऐसा नहीं मानता और वास्तविक रीतिसे निद्रामें नाश होता भी नहीं। इसी तरह जीवनके पश्चात् मृत्यु हुआ तो उसके पश्चात् यदि जन्म होता है, तो मृत्युके समय भी कुछ विलक्षण अवस्थामें जीवन रहना ही चाहिये, जिसका पुनः जन्म होता है। स्थूल-सूक्ष्म-कारण ये तीन शरीर मनुष्यके हैं। इनमें स्थूल शरीरका नाश होनेपर सूक्ष्म और कारण देह रहते हैं पश्चात् सूक्ष्म देह भी विलीन होनेपर कारण देह रहता है। अर्थात् कारण देह जैसा जीवनमें वैसा ही मृत्युमें रहता है। स्थूल देह अन्नमय है, सूक्ष्मदेह वासनादेह है और कारण देह मनोमय है, इसके पश्चात् भी विज्ञानमय देह है जो महाकारण संज्ञासे प्रसिद्ध है।

भूः —स्थूल— अन्नमय }
भुवः—सूक्ष्म—प्राणमय } मृत्युक्षेत्र

स्वः— { कारण–मनोमय }
{ महाकारण–विज्ञानमय बुद्धि } अमर क्षेत्र

यहां स्पष्ट हुआ कि स्थूल और सूक्ष्म देह बनते और बिगडते हैं और दोनों कारण देह स्थायी रहते हैं अतः यदि हम अपने मन और बुद्धिको सामर्थ्यवान करेंगे तो इससे हम अपने अमरत्वका अनुभव कर सकेंगे। संक्षेपसे स्थूल शरीरका मृत्यु होनेपर भी अपने अमर रहनेका अनुभव इस तरह किया जा सकता है। यही साधन भुवः व्याहृतिने सूचित किया है। ज्ञानपूर्वक कर्म स्थूल–सूक्ष्म–कारण देहोंको पवित्र करता है। और स्थूलके मरनेपर सूक्ष्म तथा कारण देहोंपर रहनेवाला जीव अपने आपको स्थायी जीवनके साथ अनुभव करता है और मृत्युसे अपने अस्तित्वमें कुछ भी बिगाड नहीं हुआ, पर मृत्युसे अधिक कार्यक्षम शरीर प्राप्त हुआ ऐसा वह मानता है। यह उसके आनंदका विषय है। कोट उतार का रखा, तो मेरे अस्तित्वमें कुछ भी हानि नहीं हुई। एक कोट गया तो मैं दूसरा नया कोट धारण

करूंगा। इसमें रोनेका कोई कारण नहीं है। इस तरह मृत्यु का भय दूर हो जाता है और यह ज्ञानी मानव अपने स्थायी जीवनमें, स्थायी अस्तित्वमें आनन्दप्रसन्न रहता है।

इस प्रकार अपने स्थायी अस्तित्वका अनुभव करनेका अनुष्ठान करनेका विषय अन्य लेखमें प्रतिपादन किया जायगा। यहां इतना ही स्मरण रखना चाहिये कि मनुष्य के लिये स्थायी अस्तित्व ज्ञानविज्ञानसे है और मृत्यु स्थूल शरीरके पीछे लगा है। इतना स्मरण रखनेके पश्चात् हम तीसरी 'स्वः' इस व्याहृतिको अपने विचारके लिये लेते हैं।

स्वः = स्वर्

'स्वः' ही 'स्वर्' है। रकारका विसर्ग होता है। 'स्वर्' में 'स्व+र्' अथवा 'स्व+र' ये दो विभाग हैं। **'स्वयं राजते इति स्वरः'** जो स्वयं रहता है, प्रकाशता है, प्रदीप्त रहता है, जो अपनी निज शक्तिसे रहता है, अपने रहनेके लिये तथा अपना प्रकाश फैलानेके लिये जिसको किसी दूसरेकी आवश्यकता नहीं है, जो अपनी निज शक्तिसे प्रकाशेगा और अपनी ही निज शक्तिसे अपना प्रकाश फैलाकर विश्वको देगा और ऐसा करनेके लिये जिसको दूसरेकी सहायताकी अपेक्षा नहीं वह 'स्वर, स्वर्, स्वः' है। भूः, भुवः, स्वः ये तीन व्याहृतियां हैं, भूः से अस्तित्व, भुवः से ज्ञानपूर्वक किया शुभ कर्म और स्वः से आत्मसामर्थ्यका प्रकाश करनेका भाव सूचित होता है। ये तीनों भाव परस्पर संबंधित हैं।

यदि मनुष्यका अस्तित्व न रहा, तो कुछ भी काम होनेकी संभावना नहीं। अस्तित्वको-मानवी जीवनको सफल बनानेके लिये ज्ञानपूर्वक कर्म करनेकी आवश्यकता है। इतना होनेपर भी मानवी जीवन कृतकृत्य हुआ ऐसा नहीं समझा जायगा। इसकी कृतकृत्यता होनेके लिये इसकी आत्मशक्तिका प्रकाश पूर्णतया चारों ओर फैलना चाहिये। चारों दिशाओंके मानवोंका आकर्षण इसकी ओर होना चाहिये। यह प्रकाशका केन्द्र बने और इसके प्रकाशसे मानव समाज प्रकाशित हो। ऐसा दिव्य प्रकाश यह देने। इसका नाम है 'स्व-र्' प्राप्ति। यह मानवकी कृतकृत्यता करनेवाली है।

अक्षरोंमें कुछ व्यंजन होते हैं और कई 'स्वर' होते हैं। स्वरोंका उच्चारण अखंड होता है। अ ऽऽऽऽ कितना भी करो, वह अखंडित रीतिसे होता ही रहेगा। अखण्ड प्रगतिका नाम 'स्व-र' है। यही 'स्व-र्' है, अखंड प्रकाश, अखंड प्रगति, अव्यय वैभव, अमरज्ञान इस स्वरमें है। यह प्राप्त होनेपर मनुष्य अपने आपको कृतकृत्य मानता है, अखंड आनंद उसको प्राप्त होता है। वह सदा आनंद प्रसन्न रहता है। वह प्रकाशक होता है, नया दिव्य संदेश वह देता है, इससे सब लोग दिव्य मार्ग जानते हैं और कृतकृत्य होते हैं। यह है इस 'स्वर्' का महत्त्व।

अब इसका वर्णन उपनिषदोंमें कैसा किया है वह देखिये। यहां यह ध्यानमें रखना चाहिये कि 'स्वः, स्वर्, सुवर' ये पद एक ही हैं, तथा 'स्वर्ग, सुवर्ग' ये भी एक ही हैं—

आकाशात्मानः स्वरीयुः
आकाशात्मा स्वरेति। कौ० उ० २।१४
स्वः प्रपद्येऽमुना। छां. उ. ३।१५।३
स्वरिति सामभ्यः। छां. ४।१७।२
स्वरिति प्रतिष्ठा। बृ. उ. ५।५।३;४
स्वस्ते दधामि। बृ. ६।४।२५
सुवरित्यसौ लोकः। तै. उ. १।५।१
सुवरित्यादित्यः।
सुवरिति यजूंषि। तै. १।५।२
सुवरिति व्यानः। तै. १।५।३
देवान् सुवर्यतः श्वे. २।३
स्वरिति अस्याः शिरः। मैत्री. ६।६
अन्तरिक्षमथो सुवः। महाना. १।९;५।७
द्यावापृथिव्योर्हिरण्मयं संश्रुतं सुवः स नः
सुवः संशिशाधि। महा. ५।९
सुवरक्षं। महा. ७।१
तपसा ऋषयः स्वरन्वविन्दन्। महा. २२।१
दमेन ब्रह्मचारिणः सुवरगच्छन्। महा. २२१
स्वस्ते शीर्षे। शीरस् २
यस्मिल्लोके स्वर्हितम्। रामोत्त. ५
सन्धीयते सुवर्गेण लोकेन। तै. उ. १।३।४
सत्येन न सुवर्गाल्लोकाच्च्यवन्ते। महा. २१।२
साम सुवर्गो लोको बृहत्। अग्निहोत्रं सुवर्गस्य
लोकस्य ज्योतिः। महा. २२।१
सुवर्गेयाय शक्त्या। श्वे. उ. २२

स्वरिति स्वर्गो लोकः स सामवेदः । संध्यो. २०
स्वरित्यस्याः शिरः । मैत्रा. ६।६
स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति । कठ १।१२
स्वर्गो लोको ज्योतिषावृतः । अरुण. १

इस प्रकार 'स्वः' का वर्णन उपनिषदोंमें है। 'स्वः, स्वर्, सुवर, स्वर्ग, सुवर्ग' ये सब पद एक ही आशय बतानेवाले पद हैं। अब प्रथम इन वचनोंका भाव देखिये- 'आकाश जिसका रूप है जो ऐसा व्यापक आत्मा उसका वर्णन स्वः पदसे होता है। ज्ञानी लोग इसको प्राप्त करते हैं। इस ज्ञानपूर्वक कर्मसे मैं इस स्वरको प्राप्त करता हूं। सामगानसे स्वरकी प्राप्ति होती है, सामगान स्वरोंसे ही होता है। स्वः यह सबका आधार है। सुवर् यह वह ऊपर दीखने वाला लोक है। जहां सूर्य है वह स्वर ही है। यजुर्वेद भी स्वर ही है। व्यान प्राणको स्वर् कहते हैं। देव स्वर्को प्राप्त होते हैं। गायत्रीका सिर स्वर् है। अन्न ही स्वर् है। द्यावापृथिवीमें जो सुयश है वह स्वर् ही है। ऋषियोंने तपसे स्वर्को प्राप्त किया था। ब्रह्मचारियोंने इन्द्रिय-दमनसे वही स्वर् प्राप्त किया। इस लोकमें स्वर् रखा गया है। ज्ञानसे स्वर्लोकको प्राप्त करते हैं। सत्यसे लोग स्वर्गसे गिरते नहीं। सामगान बना स्वर्गलोक है और अग्निहोत्र उसकी ज्योति है। शक्तिसे स्वर्गलोक मिलता है। स्वर्लोकमें किसी तरहका भय नहीं होता। स्वर्गलोक तेजसे भरा है।'

यह वर्णन इस स्वरका उपनिषदोंमें है। इससे इसकी श्रेष्ठताका पता लगता है। भूः और भुवः से यह उत्तर है, अधिक श्रेष्ठ है। सत्य और ज्ञानपूर्वक किये कर्मसे यह स्थान प्राप्त होता है। इन तीन व्याहृतियोंके इतने मननसे संक्षेपसे कहना हो तो निम्नलिखित तीन बोध मिलते हैं--

१ अपना अस्तित्व सुरक्षित रखनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये।

२ ज्ञान प्राप्त करके अभ्युदयके लिये उत्तम शुभ कर्म करने चाहिये,

३ और अपना प्रकाश फैलाकर अपने आत्मप्रकाशकी शक्तिसे सबको प्रकाशित तथा आनन्द पूर्ण करना चाहिये।

ये कर्तव्य जैसे वैयक्तिक हैं वैसे ही सार्वजनिक और राष्ट्रीय भी हैं।

१ अपना राष्ट्रीय अस्तित्व सुरक्षित रहनेके लिये जो कर्तव्य करने आवश्यक हैं वे करने चाहिये,

२ राष्ट्रभरमें यथेच्छ ज्ञानप्रचार करके अपने राष्ट्रीय अभ्युदयके लिये जो शुभ कर्म करनेकी आवश्यकता हो वे सब कर्तव्य करने चाहिये।

३ तथा अपने राष्ट्रका सर्वत्र प्रकाश फैले और सब देश अपने राष्ट्रके ज्ञानसे लाभ उठावें और सबको आनन्द प्रसन्न रहनेका मार्ग दीखे ऐसा करना चाहिये।

ये राष्ट्रीय बोध इन्ही तीनों व्याहृतियोंसे मिलते हैं। अब तीनों महाव्याहृतियोंका इकट्ठा विचार करना चाहिये -

तीन महाव्याहृतियाँ

'भूः भुवः स्वः' ये तीन महाव्याहृतियाँ कहलाती है, वेद तथा उपनिषदोंमें इन तीनोंको बडा महत्वका स्थान मिला है। इसलिये यहां संक्षेपसे इन तीनों महाव्याहृतियोंका विचार करते हैं। वेद मंत्रोंमें इनका उल्लेख आया है ऐसे मंत्र देखिये क्या कहते हैं--

भूर्भुवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्यां
सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः।
नर्य प्रजां मे पाहि, शंस्य पशून् मे पाहि
अथर्व पितुं मे पाहि। वा० य ३।३७

'अस्तित्व--ज्ञान--आत्मप्रकाशके लिये यत्न हो। मैं उत्तम प्रजासे प्रजावाला हो जाऊं, उत्तम वीरोंसे वीर बनूं, उत्तम पोषणोंसे हृष्टपुष्ट बनूं। हे अनुयायियोंका हित करने वाले नेता! मेरी प्रजाका रक्षण कर, हे प्रशंसा योग्य नेता! मेरे पशुओंका रक्षण कर हे स्थायी रहनेवाले! मेरे अन्नका संरक्षण कर।' तीन व्याहृतियोंके द्वारा अस्तित्व-ज्ञान--आत्मप्रकाश होकर जो होता है वह इसमें दिया है। सुप्रजा होनी चाहिये, वह वीर संतति होना चाहिये, वह हृष्टपुष्ट बलिष्ठ होनी चाहिये, पर्याप्त अन्न अपने पास रहना चाहिये।

भूर्भुवः स्वः द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।
वा. य. ३।५

"अस्तित्व--ज्ञान--आत्मप्रकाश हो। द्युलोकके समान विस्तृत और पृथिवीके समान श्रेष्ठ मेरा कार्य हो।"

भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य
धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् । वा. य. ३६।३

'अस्तित्व–ज्ञान और अपना प्रभाव सुस्थिर हो। मैं उस सर्व विश्वके प्रसविता परमात्मदेवकी श्रेष्ठ ज्योतीका ध्यान करता हूं, जिससे हम सबकी बुद्धियोंको शुभ प्रेरणा मिले।' इस तरह भूः भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृतियोंके साथ वेदमंत्रों द्वारा कैसे विचार प्रकट हो रहे हैं उनका विचार कीजिये। अब उपनिषदोंमें इन महाव्याहृतियोंके विषयमें क्या कहा है सो देखिये—

भूर्भुवः स्वः स्वाहा । बृ. उ. ६।३।३
भूर्भुवः स्वः सर्वं त्वयि दधामि । बृ. ६।४।२५
भूर्भुवः स्वरोम् । मैत्री ६।३५
भूर्भुवः स्वरन्नम् । म. ना. ७।२
भूर्भुवः स्वर्ब्रह्म । म. ना. ८।१
भूरसि भुवोऽसि सुवरसि भूर्भूतये स्वाहा ।
पार. ५।६

भूरिति भुवो लोकः, भुव इत्यन्तरिक्षलोकः
स्वरिति स्वर्गलोकः । गायत्री २
भूरिति ऋग्भ्यः, भुवरिति यजुर्भ्यः स्वरिति
सामभ्यः । छां ४।१७।३
भूर्भुवः स्वरित्येषास्य प्रजापतेः स्थविष्ठा तनूर्या
लोकवती । मैत्रा ६।६
भूर्भुवः स्वः ब्रह्म स्वयंभु । चित्यु ६।१
भूर्भुवस्वरिमे लोकाश्चन्द्रसूर्याग्निदेवताः ।
योग. ६।५६

भूर्लोकः पादयोः भुवर्लोकस्तु जानुनि,
सुवर्लोकः कटिप्रदेशः । ना. बिं. ३
भूस्त्वादिः, मध्यं भुवस्ते, स्वस्ते शीर्षं विश्व-
रूपोऽसि । चतुर्वे. ८

'भूः भुवः स्वः इससे जो बनता है वह मैं तेरे लिये समर्पण करता हूं। भूः भुवः स्वः ये तीनो ओंकार रूप है। भूः भुवः स्वः यह सब ब्रह्म है। ये तीनों ब्रह्म हैं। ये तीनों तेरे रूप हैं। पृथ्वीका नाम भूः, अन्तरिक्षका नाम भुवः और स्वर्गलोकका नाम स्वः है। भूः ऋग्वेदसे, भुवः यजुर्वेदसे और स्वः सामवेदसे होते हैं। भूः भुवः स्वः यह प्रजापति परमात्माकी स्थूल तनु है, जिसमें सब लोक समाये हैं, भूः भुवः स्वः यह स्वयं स्वयंभु ब्रह्म ही है। अग्नि सूर्य चन्द्र ही ये तीन व्याहृतियोंसे सूचित होते हैं। भूः पांव, भुवः घुटने और स्वः कटिप्रदेश है अर्थात् यह परमात्माका विराट् देह है। भूः उसका आदि है, भुवः उसका मध्य है और स्वः उसका सिर है, इस तरह ये तीन व्याहृतियों द्वारा विश्वरूप परमात्माका वर्णन होता है।' यह उपनिषदोंका कथन अत्यंत मननीय है। इसका विचार संक्षेपसे करते हैं—

इन तीन महाव्याहृतियोंका विचार ऋषियोंने कितना किया था, वह इन वचनोंसे विदित हो सकता है। भूः से पृथिवी, भुवः से अन्तरिक्ष, और स्वः से द्युलोकका बोध होनेसे 'भूर्भुवः स्वः' से संपूर्ण विश्वका बोध होता है। पृथ्वी लेनेसे जल, अग्नि, वनस्पतियां आदि सब पदार्थ आगये, अन्तरिक्ष लेनेसे वायु, मेघ, विद्युत् आदि सब पदार्थ आगये, और द्युलोक लेनेसे सूर्य चन्द्र तारागण आदि सब आगये हैं। अर्थात् 'भूर्भुवः स्वः' कहनेसे विश्वके अन्तर्गत सब पदार्थ आगये और कुछ बाकी रहा नहीं यह स्पष्ट है।

मनुष्यका अस्तित्व इन सब पदार्थोंपर अवलंबित है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वृक्षवनस्पति, वृष्टी, विद्युत, वायु, सूर्य चन्द्र नक्षत्र इन सब पदार्थोंकी शक्ति प्राप्त होनेसे ही मनुष्य जीवित रह सकता है और उसका अस्तित्व यहां टिक सकता है। जल न मिला, अग्निसूर्यकी उष्णता न मिली, वायु न मिला तो मनुष्यका रहना असंभव है। इस तरह 'भूर्भुवः स्वः' के साथ इस तरह मनुष्यके अस्तित्वका संबंध है। मनुष्यका ज्ञान भी इन्हीं पदार्थोंका ज्ञान है। कर्म भी इन्हीं पदार्थोंके संबंधसे होनेवाली क्रिया है। तो मनुष्यने अपने अभ्युदयके लिये करने योग्य ज्ञानपूर्वक कर्म इन पदार्थोंके साथ होनेवाली क्रिया है। जो भी मनुष्य कर्म करता है वह कर्म इन पदार्थोंके साथ ही किया जाता है। इसी तरह मनुष्यका प्रकाश फैलना है वह भी इनकी सहायतासे ही फैलना है। इस रीतिसे देखा जाय तो यह बात स्पष्ट हो जायगी कि भूर्भुवः स्वः से ही मनुष्य जीवित रहता, अभ्युदयार्थ यत्न करता और आत्मप्रकाश कर सकता है। अर्थात् मनुष्यका सर्वस्व 'भूर्भुवः स्वः' के साथ संबंधित है। संपूर्ण विश्वरूप ही

परमेश्वरका रूप है, इसी कारण इन वचनोंमें कहा है कि प्रजापतिका यह स्थूल शरीर है। स्वयंभु ब्रह्म ही ये तीन व्याहृतियाँ है। नारायण भी यही है। इस सब वर्णनका तात्पर्य एक ही है।

इस तरह इन तीन महाव्याहृतियोंका विचार हुआ। मनुष्य व्यक्ति तथा मानवजातीका भूत भविष्य वर्तमान सबका सब इन तीन व्याहृतियोंसे संबंधित है। मनुष्य इन तीन व्याहृतियोंका त्याग करके जीवित भी नहीं रह सकता। मनुष्यका अस्तित्व, ज्ञान और उत्कर्ष इनकी अनुकूलता पर अवलंबित है। इसलिये मनुष्य इनको अनुकूलता संपादन करके यहां रहे और अनुकूलतासे ही कृतकृत्य बने। अब अगली व्याहृतियोंका विचार करते हैं।

महः

'महः' चौथी व्याहृति है। इसका अर्थ—१ 'महोत्सव, उत्सवका समय; २ अर्पण, समर्पण, यज्ञ, ३ प्रकाश, तेज, ज्योति; ४ वैदिक मंत्र; स्तुतिके मंत्र, ५ आनंद, सुख, प्रसन्नता; ६ महत्व, बडापन, शक्ति, सामर्थ्य; ७ विपुलता, बहुतायतता; 'जल, उदक' ये अर्थ इस व्याहृतिके कोशमें दिये हैं। महत्त्व, सामर्थ्य, बडापन ये अर्थ यहां मुख्य हैं और महत्त्वके सहायक अन्य अर्थ है। 'भूः--भुव.--स्वः' के मुख्य अर्थ 'अस्तित्व--ज्ञानपूर्वक कर्म आत्मप्रकाश' ये हमने इससे पूर्व निश्चित किये हैं, इनके साथ साथ 'सामर्थ्य, महत्ता' ये इसके अर्थ विचारमें लेने योग्य हैं।

महत्ता, महत्त्व, सामर्थ्य उसको प्राप्त होता है कि जिसका अस्तित्व सुरक्षित है, जो ज्ञानपूर्वक उत्तम कर्म करता है और जो अपने तेजसे प्रकाशता है। जिसका अस्तित्व डामाडोल हो रहा हो, जो ज्ञान विज्ञानहीन हो, जो किसी प्रकार शुभ कर्म करनेमें असमर्थ हो उसको महत्त्व कदापि प्राप्त नहीं हो सकता।

महत्ता, विशालता यह संकुचितताके विरुद्ध है। संकुचित भाव नहीं होना चाहिये। मन विशाल चाहिये। जो मनुष्य सब मनुष्योंको समदृष्टीसे देखता है उसका मन विशाल है और जो अपनी जातीतक ही देखता है वह संकुचित मनवाला है। मनुष्यको अपना मन विशाल करना चाहिये और संकुचित भाव को दूर करना चाहिये, तब महत्ता प्राप्त हो सकती है।

इस 'महः' के विषयमें उपनिषद् क्या कहते हैं सो अब देखिये--

महर्

ओं महः। महाना. १५।२

यो वै रुद्रः यश्च महः। शिरस् २

नाभिदेशे महर्जगत्। नाद. ४

स महर्लोकं जयति। नृ पू ५।६

महस्

एतदोजश्च महश्चेत्युपासीत। छां ३।१३।५

मह इति तद्ब्रह्म। तै. १।५।१

मह इत्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। तै. १।५।२

मह इति ब्रह्म। मह इत्यन्नम्। तै. १।५।३

मह इति ब्रह्मणि (प्रतितिष्ठति) तै १।६।२

महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तै. २।४।१

तन्महः इत्युपासीत महान्भवति। तै. ३।१०।३

पुरुषो वै रुद्रस्तन्महः। महाना. १३।२

ब्रह्मणे त्वा महसे महाना. २४।१

"ओंकारसे जिसका बोध होता है वह 'महः' है। जो रुद्र है वह 'महः' है। शरीरमें नाभीके पासका प्रदेश 'महः' कहलाता है। (इस अनुष्ठानसे) वह महर्लोकको जीतता है। जो ओज है उसकी 'महः' करके उपासना करो। जो महः है वही ब्रह्म है। वही आदित्य है, वही अन्न है। महः प्राप्त होनेसे ब्रह्म प्राप्त होनेके समान है। 'महः' में सबका आधार है। जो 'महः' की उपासना करता है वह बडा होता है। जो पुरुष ईश्वर है वही महः है। ब्रह्म ही महः है।" इस प्रकार उपनिषद् कहते हैं।

यहां 'महः=महर्' और 'महः=महस्' ये दो पद दिये हैं। यद्यपि दोनोंका रूप 'महः' ऐसा एक ही होता है तथापि इन दोनोंमें भेद है। 'महर्' का अर्थ स्थानविशेष है और 'महस्' का अर्थ महत्त्वविशिष्टता है। एक गुण बताता है और दूसरा उस स्थानपर आरूढ होनेका भाव बताता है। तथापि इन दोनोंमें महत्त्वका भाव समान है। इसलिये पाठकोंसे निवेदन है कि वे इन दोनों पदोंकी पृथकताका अनुभव करते हुए दोनोंमें जो समान महत्त्वका भाव है वही ध्यानमें लें। वेद मंत्रोंमें यही 'महस्' पद है, वे मंत्र अब देखिये-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एतेऽमध्यमासो
महसा विवावृधुः। सुजातासो जनुषा पृश्नि-
मातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥
ऋ० ५।५९।६

' ये वीर हैं, इनमें कोई श्रेष्ठ, कोई मध्यम और कोई कनिष्ठ ऐसे नहीं हैं। सब वीर समान हैं, ये अपना महत्त्व बढाते हैं और उस महत्त्वके साथ ये वीर बढते हैं। ये जन्मसे कुलीन हैं, भूमिको माता माननेवाले ये दिव्य वीर हैं ये हमारे साथ आकर रहें। ' यहां महत्त्वके साथ बढनेके लिये किन गुणोंकी आवश्यकता है यह दर्शाया है, सबका समान होना, उच्चनीच मध्यम इस विषमभावका न होना, मातृभूमिको माता मानकर उसकी उन्नतिके लिये अपना जीवनदेनेको तैयार रहना आदि गुण जिन वीरोंमें होंगे वेही वीर महत्त्वके साथ बढ सकते हैं। इनके विरुद्ध गुणधर्म वाले अर्थात् जिनमें समताका बर्ताव नहीं है, उच्चनीचता है, जो मातृभूमिका हित नहीं करते, मिलकर कार्य नहीं करते उनको न महत्त्व प्राप्त होता है और नाही वे महत्त्वके कारण बढ सकते हैं। वैसे ही देखो—

सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु। ऋ. ५।६०।४

' उन वीरोंने साथ साथ अपने शरीरों द्वारा अपने महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य प्रकट किये हैं। ' और एक मंत्र देखो-

प्रबुध्न्या व ईरते महांसि। ऋ. ७।५६।१४

' आपके महत्त्वपूर्ण सामर्थ्य चारों ओर फैल रहे हैं। ' चारों ओर आपके महत्त्वपूर्ण सामर्थ्यका प्रकाश फैल रहा है।

महो देवस्य पूर्व्यस्य धाम। अथर्व. ४।१।६

' पूर्व देवका धाम बडा है। ' महः यह पुराणपुरुषका धाम है।

अयक्ष्मतातिं मह इह धत्तम्। अथर्व ४।२५।५

' यक्ष्मादि रोगरहित महासामर्थ्य यहां धारण करके रखो। '

महो विष्णु उरोरन्तरिक्षात्। अथर्व. ७।२६।८

' व्यापक ईश्वरका महिमा विशाल अन्तरिक्षसे भी बडा है। ' यहा का ' महः ' शब्द महान् सामर्थ्यका द्योतक है।

मह स्कंभस्य मिमानो अंगम्। अथर्व. १०।७।२

' आधारस्तंभ ईश्वरका अंग महान सामर्थ्यशाली है। ' यह महः पद ईश्वरके महत्त्वके लिये प्रयुक्त है।

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः।
तपो ये चक्रिरे महः। अथर्व. १८।२।१६

' तप करके जो स्वर्गको जाते हैं, तपसे जो कभी पराभूत नहीं हुए, वे तपसे महासामर्थ्य प्राप्त करते हैं। ' यहां तपसे महः का सामर्थ्य होता है ऐसा कहा है। इस तरह ' महः ' का उल्लेख वेदमंत्रोंमें है। प्रायः अनेक स्थानोंमें अपने अद्भुत आत्मसामर्थ्यका भाव इसमें है। अस्तित्व-ज्ञानपूर्वक कर्म-आत्मप्रकाशके पश्चात् यह महासामर्थ्य प्राप्त होता है जो प्राप्त करना चाहिये।

जनः

अब ' महः ' के पश्चात् पांचवी व्याहृती ' जनः ' का विचार करते हैं-

' जनः '= का अर्थ है ' प्रजनन, उत्पन्न करनेकी शक्ति। प्रजनन करना, उगना, ऊपर आना, बढना, होना, जन्म लेना। मनुष्य मानवजाती। जाती, राष्ट्र। महः के ऊपरका स्थान।

महः के पश्चात् जनः का स्थान है। इसमें प्रजननका कार्य मुख्य है। प्रजनन किस समय करना चाहिये इसका उत्तर यहां मिलता है—

१ प्रथम अपने अस्तित्वको सुस्थिर करो, (भूः)
२ पश्चात् ज्ञान प्राप्त करो और ज्ञानपूर्वक नियोजनसे उत्तम श्रेष्ठ कर्म करो, (भुवः)
३ इतना करनेसे आप अपना तेज चारों ओर फैला सकते हैं। (स्वः)
४ इस तरह अपना तेज फैलनेके पश्चात् महत्त्व प्राप्त होगा (महः)
५ इस तरहका महत्त्व प्राप्त होनेके पश्चात् ' जनः ' अर्थात् विवाह करके प्रजनन करना योग्य है। (जनः)

यह है प्रजनन करनेका समय। स्त्री पुरुषोंमें सुशिक्षासे पूर्वोक्त योग्यता सुस्थिर होनेपर वे परस्पर मिलकर प्रजनन

करें। तब उत्तमसे उत्तम प्रजा होगी और राष्ट्रकी काया पलट जायगी। श्रेष्ठ प्रजा निर्माण होगी। यही मनुष्यका कर्तव्य है।

अब जनः के विषयमें उपनिषद् क्या कहते हैं सो देखिये--

स जनलोकं जयति। नृ. पू. ५।६

ॐ भूर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यम्। महाना. १

ॐ जनदिति व्याहृत्या। महाना ३

जनश्च नारायणः, तपश्च नारायणः। ना. उ. १।५

जनोलोकस्तु हृद्देशे कण्ठे लोकस्तपस्ततः।

ना विं ४

' साधक तपसे जनलोक पर विजय प्राप्त करता है। भूभुर्व आदि सात व्याहृतियोंमें जनः व्याहृति पांचवी है। इसको ' जनः, जनस्, जनत् ' ऐसे भी नाम है। जन. से बोधित होनेवाला नारायण स्वरूप है। जनोलोक हृदयमें है और कण्ठमें तपोलोक है।' इस तरह जनोलोकके विषयमें उपनिषदोंका कथन है। सब व्याहृतियाँ ईश्वर स्वरूप हैं और उनका स्थान मानवशरीरमें भी है।

प्रजननकी इच्छा

प्रजननसे अपने समान जातीकी उत्पत्ति होती है। मनुष्यसे मनुष्य, कुत्तेसे कुत्ता और घोडेसे घोडा आदि। यह प्रजनन कर्म स्वाभाविक है। ' मैं एक हूं, मैं अनेक बनूं' (एकोऽहं बहुस्यां) यह इच्छा हरएकमें होती है। पशुपक्षी तो स्वभाव धर्मसे नियममें रहते हैं और यथा ऋतु प्रजनन स्वभावधर्मसे करते हैं। ऋतुकाल को छोड-कर उनको ज्ञान भी नहीं होता कि यह नर है या नारी है। मनुष्यका वैसा नहीं है, मनुष्य मन और बुद्धिसे स्वतंत्र है, इसलिये वह अपनी स्वतंत्रताकी बुद्धिसे स्त्रीपुरुष भेदको जानता है और उसका सदुपयोग या दुरुपयोग करता है। वस्तुका अतियोग, अयोग, भ्रान्तियोग तथा सुयोग करके अपनी अवनति अथवा उन्नति कर सकता है। इसीलिये इसके लिये धर्मनियम लगे हैं। यह मनुष्य धर्म अधर्मको जाने और धर्मपालन द्वारा अपनी उन्नति निश्चित रूपसे करे।

यहां इन व्याहृतियों द्वारा मनुष्य कब प्रजनन करे, और प्रजननके पूर्व किस अनुष्ठानको करे यह सब बताया है। देखिये-- (१ भूः) प्रथम अपना अस्तित्व सुस्थिर करने-का यत्न करे। अर्थात् शरीर, इंद्रियां मन, बुद्धि आत्मा इनका स्वास्थ्य प्राप्त करे और समाजकी संघटना करके बलवान बने, निर्भय बने और सुरक्षित रहे। (२ भुव.) ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञानसे कौनसे शुभ कर्म व्यक्ति तथा समाजकी सुरक्षा और शान्तिके लिये आवश्यक हैं इसका ज्ञान प्राप्त करे और जो आवश्यक तथा करने योग्य शुभ कर्म हों, उनको यथायोग्य रीतिसे करे। (३ स्वः) जिससे अपना तेज फैल सकता है, अपने प्रकाशसे सबको मार्गदर्शन हो सकता, सबका आकर्षण हो सकता है ऐसा करे और स्वयं तेजका पुञ्ज बने। (४ महः) अपना महत्व, अपना सामर्थ्य बढावे और संकुचित भाव छोडकर विशाल भावका धारण करे। अर्थात् जनता नारायण का रूप है यह जानकर उसकी सेवा करके उसको आनन्द प्रसन्न करनेके लिये कर्म करे। ऐसा कभी न करें कि एक मानव विभागका हित करनेके लिये दूसरे विभागका नाश करे, पर ऐसा करे कि जिससे अविरोधसे सबकी उन्नति हो सके। इतना होनेके पश्चात् (५ जनः) प्रजननका समय आता है। इतना कर्तव्य किया तो मनुष्य उच्च अवस्थाको पहुंचता है। ऐसा श्रेष्ठ मनुष्य ऐसी श्रेष्ठ स्त्री से विवाह विधिसे संबद्ध होकर प्रजनन करे। इतना होनेतक शरीर, इंद्रिया, मन, बुद्धिको शुद्ध बलवान और संयमशील करें, उनको समर्थ करे, प्रगतिशील करे, श्रेष्ठ तथा प्रभावी बनावे। कभी हीनदीन दुर्बल दासभाव युक्त न बनावे। महः व्याहृतिने तो हीनदीन दुर्बल होनेका पूर्ण निषेध किया ही है।

मनुष्यकी निसर्ग प्रवृत्तीको इस तरह परिशुद्ध करके उससे अच्छेसे अच्छे कार्य करवानेकी यह विधि है। इस-से मानव समाज उन्नत अवस्थाको प्राप्त होता जाता है और कभी नीचे नहीं गिरता। मानवसमाज यहां इस पृथ्वीपर उन्नत होता रहना चाहिये, वह पशुताको पहुंचना नहीं चाहिये। इस उन्नत अवस्थाको निश्चित रूपसे पहुंचनेका साधनमार्ग है। अब आगेकी छठी व्याहृति देखिये—

तपः

' तपः, तपस् ' = का अर्थ है तपना, कष्ट सहन करना। ' तप् '- धातुसे ' तपस् ' बनता है। इस ' तप्'

धातुका अर्थ ऐसा है-' प्रकाशना, तेजस्वी होना, तपना, उष्ण होना, उष्णता देना, दुःख सहना, तप करना, शरीरको ताप देना, जलना । '

इस ' तप् ' धातुसे ' तपः, तपस् ' ये पद बनते हैं इसलिये इनके अर्थ— ' उष्णता, गर्मी, दुःख, दुःखसहन करनेकी शक्ति, तप, धार्मिक तपस्या, ध्यान, नीतिधर्मका आचरण, व्रत, नियम ' ऐसे इसके अर्थ हैं ।

अच्छा शुभ कर्म करनेके समय कुछ न कुछ कष्ट तो होंगे ही, वे कष्ट आनन्दसे सहन करना और कितने भी कष्ट हुए तो भी उस शुभ कर्मको पूर्ण करना । यह तपसे होनेवाला है । यज्ञ करना हो, ज्ञान प्राप्त करना या ज्ञान-का उपदेश करना, राष्ट्रका संरक्षण करना अथवा राष्ट्रकी सेवा करना, खेती करना, व्यापार व्यवहार करना आदि सभी कर्म करनेके समय कुछ न कुछ कष्ट अवश्य होंगे, उन कष्टोंके कारण वे व्यवहार न छोडना, परंतु कष्टोंको सहन करके इन सब उपयोगी कर्मोंको करनेका नाम तप है ।

आज कल तपका कुछ विपरीत सा अर्थ लोगोंने समझा है । चारों ओर चार अग्नि जलाकर सूर्यकी उष्णतामें दो तीन घण्टे बैठना, खीलोंके पुट्ठेपर बैठना, पानीमें खडा रहकर जप करना, धूवेंमें बैठना, एक पांवपर खडा रहना, अपने ही हाथको सुखाना, आदि अनेक प्रकारके तप होते हैं ऐसा लोक आजकल समझते हैं, पर यह बात सच नहीं है । ये तप नहीं हैं । ये तो तामसी आचरण हैं । इनको करना नहीं चाहिये । ये अज्ञानके कारण लोक कर रहे हैं । इनसे किसी तरहका लाभ होनेवाला नहीं है । इसलिये ऐसे तामसी क्रियाकलापको कोई न करे ।

मनुष्यको शीत उष्ण, सर्दी गर्मी, वृष्टी धूप, भोजन मिलना न मिलना आदि सहन करनेकी शक्ति प्राप्त करनी चाहिये ।

हरएक कार्य करनेके समय मनुष्यको सर्दीमें या 'गर्मीमें जाना पडता है, धूपमें भ्रमण करना आवश्यक होता है, वृष्टीमें जानेका कार्य होता है । इनको सहन करनेकी शक्ति मनुष्यको अवश्य प्राप्त करनी चाहिये । यह शीत, उष्ण, सुख दुःख, हानि लाभ सहन करनेकी शक्ति जिस मनुष्यमें होती है वही मनुष्य कुछ विशेष कार्य कर सकता है । यही तप है । तपके विषयमें उपनिषदादि ग्रंथोंमें बहुत कहा है वह देखिये—

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा । केन ३३
तपो दानम् । छां ३।१७।४
मेधया तपसाजनयत् पिता । बृ. १।५।१
तपश्च स्वाध्याय प्रवचने च । तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टि । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः तद्धि तपः । तै. १।९।१
तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति । तै. ३।२।१
यः पूर्वं तपसो जातम् । कठ ४।६
सत्येनैन तपसा योऽनुपश्यति । श्वे. १।१५
तपसा प्राप्यते सत्त्वम् । मैत्री ४।३
तपसापहतपाप्मा । विद्यया तपसा चिन्तया वा उपलभ्यते ब्रह्म । मैत्री ४।४
प्रजापतिस्तपस्तप्त्वा । मैत्री ६।६
तपसा चीयते ब्रह्म । मुण्ड. १।१।८
ज्ञानमय तपः । मुण्ड. १।१।९
तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये । मुण्ड. १।२।११
कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् । मुण्ड. २।१।१०
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा । मु. ३।१।५
ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
महाना. ५।५

ऋतं तपः सत्यं तपः । ब्रह्मैतदुपास्वैतत्तपः ।
महाना. ८।१

अर्चयन्ति तपः सत्यम् । महाना. १३।१
तप इति तपो नानशनात्परं, यद्धि परं तपस्तद्दुराधर्षम् । तस्मात्तपसि रमन्ते ।
महाना. २१।२

तपसा देवा देवतामग्र आयन्, तपसा ऋषयः सुवरविन्दन्, तपसा सपत्नान्प्रणुदामारातीः ।
महाना. २१।१

बलेन तपः, तपसा श्रद्धा । महाना. २३।१
तपोऽग्निः । महाना. २५।१
कण्ठदेशे तपस्ततः । नाद. ४
संस्थाप्य हृदयं तपः । ध्यान ५
तपश्चास्मि तपस्विषु । गी. ७।९
शारीरं तपः । वाङ्मयं तपः । तपो मानसं ।
गी. १७

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं, कार्यमेव तत्। गी १८।३

यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। गी १८।५

शमो दमस्तपः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत। गी. १८।४२

द्रव्ययज्ञा तपोयज्ञाः। गी ४।२८

स तपो लोकं जयति। नृ. पू ५।६

'तप दान और कर्म यह सब उत्कर्षका आधार है। दान देना तप है। परमपिता परमेश्वरने मेधाबुद्धि और तपसे इस विश्वको बनाया। स्वाध्यायसे ज्ञान प्राप्त करना और प्राप्त ज्ञानका प्रवचन करके दूसरोंको देना और उनको ज्ञानी बनाना यह तप है। तपसे ब्रह्म जाना जाता है। सत्य और तपसे परमतत्त्वका दर्शन होता है। तपसे बल प्राप्त होता है। तपसे पाप दूर होता है। विद्या तप और मननसे ब्रह्मका ज्ञान मिलता है। प्रजापालक (ईश्वर) तप करके प्रजाकी पालना करता है। तपसे ब्रह्मका प्रकाश होता है। ज्ञानमय तप होता है। अरण्यमें जाकर तप और श्रद्धाकी उपासना करते हैं। कर्म, तप, ब्रह्म, श्रेष्ठ अमृत है। सत्यसे और तपसे आत्माके ज्ञानकी प्राप्ति होती है। प्रखर तपसे ऋत और सत्य प्रकट होता है। ऋत (सरल आचरण) तप है, सत्यका पालन करना तप है। इस तपसे ब्रह्मकी उपासना कर। तप और सत्यकी पूजा सब करते हैं। अनशन ही श्रेष्ठ तप है। इस तपमें सब रमते हैं। देवोंने तप करके ही देवतापन प्राप्त किया था। ऋषियोंने तपसे ही सुवर्ग प्राप्त किया था। वीरोंने तपसे ही शत्रुओंको भगाया था। तपसे बल प्राप्त होता है, और तप करनेसे श्रद्धा भी बढती है। तप अग्नि है, तपसे प्रकाश फैलता है। हृदयसे कण्ठतक तपोलोकका स्थान है। तपस्वियोंमें जो तप है वह ईश्वरकी विभूति है। शरीर वाणी और मनसे तप करना चाहिये। यज्ञ दान तप और कर्म छोडने नहीं चाहिये, यह सब अवश्य करना चाहिये। यज्ञ दान और तप करनेसे मनुष्य पवित्र होता है। शम, दम, तप, पवित्रता, अद्रोह, घमंड न करना ये गुण दैवीसंपत्तिके साथ उत्पन्न हुए पुरुषमें होते हैं। ये मनुष्यको देवत्व-दिव्यभाव-देनेवाले हैं।'

यह उपनिषदोंका तपके विषयका वर्णन अत्यंत स्पष्ट है। इससे शीतोष्णादि द्वन्द्वोंको सहन करना आदि जो तप है, उसका महत्त्व प्रकट होता है। तपको ईश्वरका रूप कहा है, इससे और अधिक तपकी प्रशंसा क्या हो सकती है? अब वेद मंत्रोंमें तपका वर्णन है उसमेंसे थोडासा देखिये—

तपसा ये अनाधृष्याः
तपसा ये स्वर्ययुः। ऋ० १०।१५४।२

'तपसे जो विजयी हुवे, वे तपसे स्वर्गको प्राप्त हुए थे।'

त्वं तपः परितप्याजयः स्वः। ऋ० १०।१६७।१

'तूने तप तपकर अपना तेज बढाया है, स्वर्ग प्राप्त किया है।'

इन्द्रावरुणा यदृषिभ्यो मनीषां
वाचो मतिं श्रुतमदत्तमग्रे।
यानि स्थानान्यसृजन्त धीराः
यज्ञं तन्वानास्तपसाभ्यपश्यम्॥ ऋ० ८।५९।६

'हे इन्द्र और वरुणो! प्रारंभमें ऋषियोंको तुमने जो बुद्धि वाणी, मननशक्ति और विद्या दी थी और उन ऋषियोंने अपनी पवित्र बुद्धिसे जो स्थान निर्माण किये थे, वे सब मैंने तपसे देखे हैं।' इस तरह तपसे विशेष ज्ञान प्राप्त होता है।

पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥ २॥
तपसा युजा विजहि शत्रून्॥ ३॥ ऋ० १०।८३

'हे उत्साही वीर! तपसे बलवान् होकर हमारा संरक्षण कर, तपसे हमारे शत्रुओंको दूर कर।'

येन देवाः स्वरारुरुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य
नाभिम्। तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य
व्रतेन तपसा यशस्यवः॥ अथर्व ४।११।६

'यश प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले देवोंने तप और व्रत करके अमृतमय स्वर्गलोकको प्राप्त किया वह सुकृतसे प्राप्त होनेवाला स्थान है।' इसमें तपसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ऐसा कहा है।

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति
शरव्यां न सा मृषा। अनुहाय तपसा मन्युना
चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम्॥ अथर्व ५।१८।९

' तीक्ष्ण शस्त्रवाले ज्ञानी वीर अपने तपके और उत्साहके बलसे जो बाण शत्रुपर छोडते हैं वे दूरसे ही शत्रुका नाश करते हैं। ' तपसे जो बल उत्पन्न होता है वह अपूर्व बल है।

मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूता-
त्पुरुषं यमाय। तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमे-
णानयैनं मेखलया सिनामि॥ अथर्व ६।१३३।३

' मैं मृत्युके लिये समर्पित हुआ ब्रह्मचारी हूँ। मैं मृत्युके लिये और एक पुरुष ले जाना चाहता हूं। उसको ज्ञान तप और श्रमसे तथा इस मेखलासे बांधता हूं। ' उसकी तैयारी करता हूं। मृत्युका अर्थ अज्ञानावस्थाको मारनेवाला गुरु है। ब्रह्मचारीकी उन्नति तप परिश्रम और ज्ञानसे होती है।

तपका अर्थ सत्कर्म करनेके समय होनेवाले कष्टोंको आनंदसे सहना है। सब श्रेष्ठ कर्म इस परिश्रमी वृत्तीसे होते हैं। जगत्के अन्दर ऐसा कोई प्राबल्य नहीं कि जो तपसे सिद्ध नहीं हो सकता। ईश्वरने भी प्रथम तप किया जिससे वह इस विश्वका निर्माण कर सका, यह तपका महत्त्व है। इस विषयमें जितना लिखा जाय उतना थोडा है। मनुष्यको प्रत्येक प्रकारका अभ्युदय और निश्रेयस तपसे ही प्राप्त हो सकता है। इस पृथ्वीपर सुखपूर्ण जीवन बनाना हो तो वह भी तपसे हो सकता है। विद्या ज्ञान बल ऐश्वर्य सामर्थ्य प्रभाव सुख आनन्द आदि सब कुछ तपसे प्राप्त होनेवाला है। अतः उन्नतिशील मनुष्योंको तपका आश्रय करना चाहिये।

सत्यं

सातवी व्याहृति 'सत्यं' है। सत्य यह व्यवहारकी सचाई बताता है। मनुष्य सत्य व्यवहार करे, काया वाचा मनसे सत्यका पालन करे। सत्यके विषयमें उपनिषदोंने जो कहा है वह यह है—

आप्नोति प्रज्ञया सत्यं संकल्पम्। कौ० ३।२
तत्सत्यं स आत्मा। छां. ६।८।७
एतत्सत्यं ब्रह्मपुरम्। छां. ८।१।५
ब्रह्मणो नाम सत्यमिति। छां. ८।३।४
यो वै स धर्मः सत्यं वै तत्। बृ० १।४।१४
हृदयेन सत्यं जानाति, हृदये सत्यं प्रतिष्ठितम्।
बृ. ३।९।२३
सत्यं वद। धर्मं चर। तै. १।११।१
सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। तै. २।१।१
यद्वेदेष्वभिहितं तत्सत्यम्। मैत्री ७।१०
सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा। मुण्ड. ३।१।६
सत्यमेव जयते नानृतम्। मुण्ड ३।१।५
सत्येन पन्था विततो देवयानः। ,,
ऋषीणां चरितं सत्यम्। प्रश्न. २।८
सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णमद्वयम्। नृ. उ. ९
सत्यं प्राणो हंसः शास्ताऽच्युतो विष्णुर्नारायणः। मैत्रा. ०;७
सत्य सर्वं प्रतिष्ठितं। महाना. १७।१

' प्रज्ञासे संकल्प सत्य होता है। आत्मा सत्य है यह ब्रह्म सत्य है। ब्रह्मका नाम सत्य है। जो धर्म है वही सत्य है। हृदयसे सत्य जाना जाता है। हृदयमें सत्य रहता है। सत्य बोल, धर्मका आचरण कर। सत्य ज्ञानमय अनन्त ब्रह्म है। जो वेदोंमें कहा है वह सत्य है। सत्यसे आत्मा प्राप्त होता है। सत्यका विजय होता है असत्यका नहीं। सत्यका मार्ग खुला हुआ है वही देवमार्ग है। ऋषियोंका चरित सत्य है। सत्य सूक्ष्म है और एक ही है। सत्यही प्राण हंस शासक अच्युत विष्णु नारायण है। सब सत्यमें आश्रय पाता है। '

इस तरह सत्यकी महिमा उपनिषदोंमें गाई है। यह सत्य मानवी व्यवहारमें आना चाहिये

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखं।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये
वा. यजु. ४०।१७, ईश. १५

' सुवर्णके पात्रसे सत्यका मुख ढंका है। हे पुष्ट होनेवाले! यदि तुम्हें सत्य देखनेकी इच्छा है तो उसे दूर करो। '

मानवी व्यवहारमें यही हो रहा है। सुवर्ण प्रलोभनसे सत्यका आच्छादन और असत्यका प्रकाश होता है। सब व्यवहार ऐसा ही चल रहा है। धन लोभ छोडनेसे ही

सत्यका संरक्षण हो सकता है । धनकोभमें न फंसनेसे मनुष्य सत्यको प्राप्त कर सकता है और सत्यही ज्ञान और सत्यही ब्रह्म है । आनंदमय ब्रह्म है इस लिये सत्यपालनसे अखंड आनंद प्राप्त हो सकता है ।

सप्तव्याहृतियोंका इतना महत्व है । ये सात गुप्त संकेतके शब्द हैं । वेदोंसे-वेदोंके मंत्रोंसे ऋषियोंने ये बाहर निकाले और अपनी सन्तानोंके अभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिके लिये उन्होंने ये सात शब्द दिये हैं । यदि मनुष्य सब वेद और उपनिषद् पढ नहीं सकते, तो न पढें, यदि बहुत मंत्रोंका मनन नहीं कर सकते तो न करें, कमसे कम इन सात शब्दोंका तो अवश्य मनन करें, और इनके उपदेशका आचरण करें, तो निःसंदेह तारण होगा ।

ये सात शब्द " भूः-भुवः-स्वः-महः-जनः-तपः-सत्यं " ये हैं और इनका भाव सात शब्दोंमें ही देना हो तो— " अस्तित्व-ज्ञान-प्रकाश-महत्व-प्रजनन-सहनशक्ति—सत्यनिष्ठा " है । मनुष्य जीवनको पवित्र और आनंदमय बनानेका सामर्थ्य इन सात शब्दोंमें है । इन सात शब्दोंकी व्याख्या सात बडे बडे ग्रंथ लिखनेसे भी नहीं हो सकेगी, इतने गंभीर ये शब्द हैं । पाठक इनका जितना मनन करेंगे उतना अधिक उपयोगी दिव्य आचरण का बोध उनको हो सकता है । पाठक मनन करें और अपना जीवन कृतकृत्य बनावें !

व्यक्तिमें शान्ति ! राष्ट्रमें शान्ति !! विश्वमें शान्ति हो !!!

प्रश्न

१ गुप्त संकेतके शब्दोंका प्रयोजन क्या है ? किस समय गुप्त संकेतके शब्द प्रयुक्त होते हैं ?

२ व्याहृति शब्दका अर्थ क्या है ? व्याहृतियाँ कितनी हैं ?

३ ' भूः ' व्याहृति जिन मंत्रोंमें प्रयुक्त हुई है, उनमेंसे पांच मन्त्र अर्थके समेत लिखिये ।

४ अपना सामर्थ्यवाली अस्तित्व जिनसे सिद्ध होता है, वे सात मन्त्र अर्थके साथ लिखिये ।

५ ' भुवः ' का अर्थ लिखिये, इससे कौनसा बोध होता है ? यह व्याहृति जिन मंत्रोंमें है वैसे ५ मंत्र अर्थके समेत लिखिये ।

६ मृत्युक्षेत्र कौनसा और अमरक्षेत्र कौनसा है ?

७ ' स्वः ' व्याहृतिका अर्थ कहिये । ' स्वः ' व्याहृति जिनमें है ऐसे ७ मंत्र अर्थके साथ लिखिये ।

८ ' भूः भुवः स्वः ' इन तीनों व्याहृतियोंका परस्पर संबंध बताकर इनसे जो बोध मिलता है वह लिखिये ।

९ जिन मन्त्रोंमें ये तीनों व्याहृतियां हैं ऐसे ५ मन्त्र अर्थके साथ लिखिये ।

१० ' महः ' का अर्थ स्पष्ट कीजिये । ' जनः ' का भाव बताइये और प्रजननका कौनसा समय है वह प्रमाण देकर बताइये ।

११ ' तपः ' का व्यवहारमें कौनसा उपयोग है ? ' तपः ' जिन वचनोंमें आया है ऐसे ७ वचन अर्थके समेत लिखिये ।

१२ ' सत्य ' का महत्व बताइये । व्यवहारमें सत्य किससे दबाया जाता है और सत्यका दर्शन साधक किस रीतिसे करे ?

१३ सातों व्याहृतियोंने क्या बोध दिया है ?

उ षा सा न क्ता

मेधातिथिः काण्वः

(ऋ० १।१३।७ उषासानक्ता)

१८० नक्तोषासा सुपेशसाऽस्मिन् यज्ञ उपह्वये ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ७ ॥

दीर्घतमा औचथ्यः

(ऋ० १।१४२।७ नक्तोषासा । अनुष्टुप्)

१८१ आ भन्दमाने उपाके नक्तोषासा सुपेशसा ।
यह्वी ऋतस्य मातरा सीदतां बर्हिरासुमत् ॥ ७ ॥

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः

(ऋ० १।१८८।६ उषासौ । गायत्री)

१८२ सुरुक्मे हि सुपेशसाऽधि श्रिया विराजतः ।
उषासावेह सीदताम् ॥ ६ ॥

ये उषा, उषासानक्ता अथवा नक्तोषासा देवताके ११ मंत्र हैं। ये आप्रीसूक्तोंमेंसे क्रमपूर्वक लिये हैं। आप्री सूक्तमें अनेक देवताएं होती हैं उनमें प्रायः छठी देवता उषासानक्ता एक देवता है। इस देवताके ये ११ मंत्र हैं। इनमें 'उषा' होनेके कारण ये मंत्र यहा लिये हैं—

१८० (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (सुपेशसा नक्त-उषासा) सुन्दर रात्री और उषाको (उपह्वये) मै बुलाता हूं। (नः इदं बर्हिः आसदे) हमारे इस आसनपर वे आकर बैठें। (७)

स्त्री (सु-पेशसा) उत्तम सुंदर रूपवाली हो। अपने रूपको सजाकर वह अधिक सुंदर दिखाई दे। अपना सौंदर्य कदापि न बिगाडे। यहां '**नक्ता-उषासा**' रात्री और उषा दोनोंको सुन्दर बननेका उपदेश है। रात्री काली स्त्री है और उषा गोरी सुंदर रंगवाली है। दोनों स्त्रियां जहातक बढाना संभव है वहातक अपना सौंदर्य बढावें। ये यज्ञमें जांय और आसनपर बैठें।

१८१ (भन्दमाने उपाके) प्रशंसित समीपस्थित (सुपेशसा) सुन्दर (ऋतस्य यह्वी मातरा) यज्ञकी बडी माताएं (उषासा नक्ता) उषा और रात्री (सुमत्) उत्तम रीतिसे (बर्हिः आ सीदतां) इस आसनपर आकर बैठे। (७)

(नक्ता उषासा) रात्री और उषा, काली और गोरी स्त्री (सुपेशसा) अपना रूप सुंदर बनावे (ऋतस्य मातरा) सत्य यज्ञ शुभकर्मको करनेवाली है (भन्दमाने यह्वी) प्रशंसनीय और बडी ये दोनों स्त्रियें (उपाके) साथ रहें, आपसमें न झगडें, मिलकर रहें (सुमत्) शुभमतिके साथ मिलजुल कर आयें और आसनोंपर बैठें। आपसमें न झगडें। आपसमें न झगडनेका उपदेश यहां है।

१८२ (सुरुक्मे) सुंदर अलंकार धारण करनेवाली (सुपेशसा) सुरूपवाली (उषासौ) उषा और रात्री (श्रिया अधि विराजतः) अपनी शोभासे शोभती है वे (इह आ सीदतां) यहां आकर बैठें। (६)

स्त्रियां (सु-रुक्मे) सुन्दर अलंकार धारण करे, (सु-पेशसा) अधिक सुंदर रूपवाली बनें, (श्रिया अधि विराजतः) अपनी शोभाको अधिक तेजस्वी बनावें। अपनी सुंदरता बढानेके साधन उपयोगमें लावें, अलंकार, वस्त्र, रंग आदिसे अपना सौंदर्य बढावे। ये उषा और रात्री यहां यज्ञस्थानमें आकर आसनपर विराजें।

गृत्समदः शौनकः ।
(ऋ० २ । ३ । ६ उषासानक्ता । त्रिष्टुप्)

१८३ साध्वपांसि सनता न उक्षिते उषासानक्ता वय्येव रण्विते ।
तन्तुं ततं संवयन्ती समीची यज्ञस्य पेशः सुदुघे पयस्वती ॥ ६ ॥

विश्वामित्रो गाथिनः ।
(३ । ४ । ६ उषासौ । त्रिष्टुप्)

१८४ आ मन्दमाने उषसा उपाके उत स्मयेते तन्वा ३ विरूपे ।
यथा नो मित्रो वरुणो जुजोषदिन्द्रो मरुत्वाँ उत वा महोभिः ॥ ६ ॥

वसुश्रुत आत्रेयः
(ऋ० ५ । ५ । ६ दोषा उषाः । गायत्री)

१८५ सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा ।
दोषामुषासमीमहे ॥ ६ ॥

---

१८३ (नः अपांसि साधु सनता) हमारे कर्मोंको उत्तम रीतिसे करनेवाली (उक्षिते) जलसिंचन करनेवाली (वय्येव रण्विते) कपडा बुननेवालीके समान प्रशंसित (ततं तन्तुं समीची संवयन्ती) फैले हुए यज्ञके तन्तुको अच्छी तरह समेटनेवाली (सुदुघे पयस्वती) उत्तम दूध देनेवाली गौओंके समान (उषासा नक्ता) उषा और रात्री (यज्ञस्य पेशः) यज्ञकी सुंदरता बढानेवाली हैं । (६)

यहां कपडा बुननेवालीकी उपमा उषाको दी है । और वह फैले हुए धागेको समेटती है ऐसा भी कहा है । उषा घरकी तरुणी है वह सूत कांतती, ताना बाना करती और कपडा बुनती है । स्त्री यह काम करे यह उपदेश यहां है । स्त्री सूत कांते और कपडा बुने ।

१८४ (उपाके) साथ मिलकर रहनेवाली परंतु (उत तन्वा विरूपे) शरीरसे विभिन्न रूपवाली (मन्दमाने उषसा) प्रशंसनीय उषा और रात्री (स्मयेते) हंस रही है । (यथा) जिस तरह (नः) हमारे लिये मित्र वरुण (मरुत्वान् इन्द्रः) मरुतोंके साथ इन्द्र अपने महोभिः (जुजोष) अपने सामर्थ्योंके साथ आकर प्रकाशते हैं । (६)

रात्री और उषा स्वरूपसे परस्पर विरुद्ध रूपवाली हैं तथापि वे मिलकर आनन्द प्रसन्न रीतिसे रहती हैं, इसलिये उनकी प्रशंसा होती है । इस तरह न्यूनाधिक योग्यतावाली स्त्रियां आपसमें ईर्ष्या द्वेष न करती हुई परस्पर प्रेमसे रहें । यह बोध यहां मिलता है ।

१८५ (सुप्रतीके वयोवृधा) सुन्दर और आयुको बढानेवाली (यह्वी ऋतस्य मातरा) बडी यज्ञकी माताएं (दोषां उषासं) रात्री और उषाकी हम (ईमहे) स्तुति करते हैं । (६)

उत्तम आदर्श सौंदर्यवाली, आयुको बढानेवाली स्त्री हो । घरवालोंको योग्य समय योग्य भोजन खान पान आदि देनेवाली स्त्री होगी तो घरवालोंकी आयु बढ सकती है । (ऋतस्य मातरा) सरलताकी, यज्ञकी ये माताएं हैं । सरल व्यवहार करती हैं जिसमें कपट नहीं होता ऐसा आचरण करती है । रात्री अंधेरेके कारण दोषोंसे युक्त है और उषाके साथ प्रकाश होनेके कारण उसमें दोष नहीं है । तथापि ये दोनों मिलजुलकर रहती हैं । यह बोध इस मंत्रसे मिलता है ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः

(ऋ० ७ । १ । ६ उषासानक्ता । त्रिष्टुप्)

१८६ उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥ ६ ॥

(ऋ० ८ । १०१ । १३) जमदग्निर्भार्गवः । उषा । बृहती

१८७ इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

काश्यपोऽसितो देवलो वा

(ऋ० ९ । ५ । ६ नक्तोषासा । गायत्री)

१८८ सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति ।
नक्तोषासा न दर्शते ॥ ६ ॥

---

१८६ (योषणे दिव्ये मही) तरुण दिव्य विशाल (बर्हिषदा पुरुहूता) आसनपर बैठनेवाली, बहुतोंद्वारा प्रशंसित (मघोनी यज्ञिये) धनयुक्त और पूज्य (उषासा नक्ता) उषा और रात्री (नः सुविताय)हमारे कल्याणके लिये (सुदुघा धेनुः इव) उत्तम दूध देनेवाली गौकी तरह (आश्रयेता) हमे आश्रय देती रहें। (६)

स्त्री ऐसी हो कि जिसको सभामें बैठनेके लिये (बर्हिषदा) आसन मिले। उसकी सभामें मान्यता हो । स्त्रीके पास अपना धन (मघोनी) हो। ' युष्-सेवने ' धातुसे ' योषणा ' शब्द बनता है। घरके बाल बच्चे आदिकी यथायोग्य सेवा करनेवाली अतएव उनकी आयु बढानेवाली स्त्री है। इसलिये इसका विशेष महत्त्व है।

१८७ (इयं या नीची) यह नीचेसे आनेवाली (अर्किणी रूपा रोहिणी) पूजनीय रूपवाली तथा बढनेवाली (कृता)की हुई उषा है (या) जो (दशसु बाहुषु अन्तः) दशों दिशाओंमें (आयती चित्रा इव) आनेवाली गौके समान (प्रत्यदर्शि) दीख रही है। (१३)

स्त्री (नीची) नीचे देखकर चलनेवाली हो, (अर्किणी रूपा) तेजस्वी तथा सुरूपवाली हो, (रोहिणी) बढनेवाली हृष्टपुष्ट हो, (कृता) कर्म करनेवाली हो, (चित्रा इव प्रत्यदर्शि) चित्रविचित्र रंगकी गौके समान सुंदर दीखे। (आयती) चलने घूमनेवाली अर्थात् आलसमें न रहनेवाली हो।

उषाके वर्णनसे यहां स्त्री कैसी हो वह बताया है।

१८८ (सुशिल्पे बृहती) सुंदर शिल्पवाली विशाल और (मही) बडी (नक्तोषासा) रात्री और उषाको (दर्शते न) दर्शनीय होनेके समान (पवमानो वृषण्यति) सोम चाहता है। (६)

(सुशिल्पे) उत्तम कुशलताके कार्य करनेवाली स्त्री हो। शिल्पमें चित्रकला, तथा अन्य कलाएं आती हैं। स्त्री इन कलाओंको करनेवाली हो। (दर्शते) सुन्दर दर्शनीय रूपवाली हो। उनका रंग, रूप, वस्त्र, प्रावरण, अलंकार, रहन सहन आकर्षक हो। ' नक्ता ' का अर्थ जो लज्जाशील है, बुरा कर्म करनेके लिये जो लज्जित होती है। (नजति इति नक्ता) जो मर्यादामें रहनेवाली है।

सुमित्रो वाध्र्यश्वः
(ऋ० १० । ७० । ६ उषासानक्ता । त्रिष्टुप्)

१८९ देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्तं उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥ ६ ॥

जमदग्निर्भार्गवः ।
(ऋ० १० । ११० । ६ उषासानक्ता । त्रिष्टुप्)

१९० आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधिश्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥ ६ ॥

१८९ (देवी सुशिल्पे) दिव्य सुंदर शिल्पवाली (दिवो दुहितरा) स्वर्गकन्या (उषासानक्ता) उषा और रात्री (योनौ नि सदता) यज्ञस्थानमें आकर बैठें। (उशती सुभगे उरौ) इच्छा करनेवाली भाग्यवाली बडी देवीयो ! (उशन्तः देवासः) इच्छा करनेवाले देव (वा उपस्थे आसीदन्तु) आपके समीप आकर बैठें। (६)

शिल्पकला जाननेवाली, स्वर्गकन्या जैसी सुन्दर दर्शनीय और (सु-भगे) उत्तम धनवाली, भाग्यवाली स्त्री हो। वह अपना और अपने घरके कुटुंबियोंका अभ्युदय चाहनेवाली हो। घरमें ' देवी ' जैसी सत्कार होने योग्य हो। स्त्री ऐसी हो।

१९० (दिव्ये योषणे) दिव्य तरुणी (सुरुक्मे बृहती) उत्तम अलंकार धारण करनेवाली बडी (शुक्रपिशं अधिश्रियं दधाने) सुन्दर रूप धारण करनेवाली (उपाके सुष्वयन्ती) पास सुखसे रहनेवाली (यजते) पूजनीय (उषासानक्ता योनौ नि सदता) उषा और रात्री घरमें आकर बैठें। (६)

दिव्य स्त्रिया उत्तम अलंकार धारण करें, अत्यंत सुन्दर रंग रूप वस्त्रालंकार धारण करके अपना सौंदर्य बढावें, घरमें तथा समाजमें आदरका स्थान प्राप्त करें और आदरणीय स्थानपर बैठें।

ऋग्वेदमें उषाके मंत्र

ऋ० १ । ३२ । ४ (हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

१९१ यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनामामिनाः प्रोत मायाः ।
आत् सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥ ४ ॥

वेदोंमें उषा देवताके जो सूक्त हैं वे क्रमांक १ से १७९ तक दिये हैं। इनमें ऋग्वेद अथर्ववेदके, सूक्त तथा मंत्र सब आगये हैं। इनके अतिरिक्त उषाका वर्णन करनेवाले मंत्र चारों वेदोंमें अनेक हैं। वे अग्न्यादि अन्यान्य देवताओंके सूक्तोंमें आये हैं। इनमें भी उषाका वर्णन विशेष महत्त्वका है। ये मंत्र एक दूसरेके साथ प्रायः संबंध नहीं रखते, तथापि इनमें आनेवाला वर्णन महत्त्वका है, इसलिये क्रमसे ये मंत्र यहां दिये हैं—

उषाका उत्पन्नकर्ता इन्द्र

१९१ (अहीनां प्रथमजां) अहीं राक्षसोंमें जो मुख्य था उसको, हे इन्द्र! तूने (यत् अहन्) जब मारा, और (मायिना मायाः प्र अमिनाः) उन कपटियोंके कपटजालोंको नष्ट किया, और (द्यां उषासं सूर्यं जनयन्) द्यौ उषा और सूर्यको प्रकट किया (तादीत्ना शत्रुं न किल विवित्से) तब तुम्हें कोई शत्रु मिला नहीं। (४)

यहां इन्द्रने द्युलोक, उषा और सूर्यको उत्पन्न किया ऐसा कहा है। उषाका जनकत्व इस तरह इन्द्रके पास आता है।

ऋ० १। ३४। ३ (हिरण्यस्तूप आंगिरसः। अश्विनौ। जगती)

१९२ समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ॥ ३ ॥

ऋ० १। ३४। १०

१९३ आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १० ॥

ऋ० १। ४४। १ (प्रस्कण्वः काण्वः। अग्निः।)

१९४ अग्ने विवस्वदुषसश्चित्रं राधो अमर्त्य।
आ दाशुषे जातवेदो वहा त्वमद्या देवाँ उषर्बुधः ॥ १ ॥

ऋ० १। ४४। २ (सतो बृहतीः)

१९५ जुष्टो हि दूतो असि हव्यवाहनोऽग्ने रथीरध्वराणाम्।
सजूरश्विभ्यामुषसा सुवीर्यमस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ २ ॥

तीनवार अन्नसेवन

१९२ (अवद्य-गोहना अश्विना) दोष दूर करनेवाले अश्विदेवो ! (समाने अहन् त्रिः) एक दिनमें तीनवार और (अद्य त्रिः) आज भी तीन वार (यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्) हमारे यज्ञमें मधुर रसका सिंचन करो। (वाजवतीः इषः त्रिः) बल बढानेवाला अन्न (दोषा उषसः च) रात्रीमें और उषःकालमें (अस्मभ्यं युवं त्रिः पिन्वतं) हमें तुम तीन वार दे दो। (३)

यहां दिनमें अर्थात् रात्री और दिनमें मिलकर तीन वार अन्नका सेवन करनेका उल्लेख है। जो निर्बल मनुष्य है वह उषःकालमें, दिनमें मध्य समयमें और रात्रीमें ऐसा तीन वार बल बढानेवाले पौष्टिक अन्नका सेवन करें और वैद्य इस तरह उसका बल बढावे।

उषाके पूर्व अश्विदेव

१९३ हे (नासत्या) सत्य पालक अश्विदेवो ! (आ गच्छतं) तुम आओ। (हविः हूयते) हविका हवन किया जाता है। (मधुपेभिः आसभिः मध्वः पिबतं) मधुर रस पीनेवाले मुखोंसे मधुर रसका पान करो। (सविता) सूर्य देव (चित्रं घृतवन्तं) रमणीय और घृतवाले (युवोः रथं) तुम्हारे रथको (उषसः पूर्वं इष्यति) उषाके पहिले प्रेषित करे। (१०)

उषाके पहिले अश्विदेवोंका उदय होता है। इसका उल्लेख इस मन्त्रमें है।

१९४ हे अमर (विवस्वत्) बसानेवाले अग्ने ! तू (उषसः चित्रं राधः) उषाका सुंदर धन है। (जातवेदः) हे वेदको फैलानेवाले ! तू आज (उषः-बुधः देवान्) उषःकालमें जागनेवाले देवोंको (दाशुषे आवह) दाताके पास ले आ। (१)

यहां अग्निको उषाका धन कहा है। और दिव्य लोक उषःकालमें जागते हैं ऐसा भी कहा है। उषःकाल ऐसा उत्तम पवित्र समय है।

१९५ हे अग्ने ! तू (हव्य-वाहनः) हविष्यान्नोंको उठाकर ले जानेवाला तथा (अध्वराणां रथीः) अहिंसामय यज्ञोंका संरक्षक रथी वीर और (जुष्टः दूतः असि) प्रशंसनीय दूत है। तू (अश्विभ्यां उषसा सजूः) अश्विदेव और उषाके साथ आकर (अस्मे) हमारेमें (बृहत् श्रवः सुवीर्यं धेहि) बडा यश और उत्तम वीरताकी स्थापना कर। (२)

हमें (बृहत् श्रवः) बडा प्रभावी अन्न और यश चाहिये तथा (सुवीर्यं) उत्तम पराक्रम करनेका सामर्थ्य चाहिये। वह हमारे अन्दर स्थिर रहे।

ऋ० १।४४।८

१९६ सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

ऋ० १।४४।१०

१९७ अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववितापुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥

ऋ० १।४४।१४

१९८ शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः ।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥

ऋ० १।४६।१ (प्रस्कण्वः काण्वः । अश्विनौ । गायत्री)

१९९ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥ १ ॥

ज्ञानी याजक अग्नि प्रदीप्त करते हैं

१९६ हे (स्वध्वर) उत्तम यज्ञ करनेवाले अग्ने ! सविता, उषा, अश्विदेव, भगको लेकर अग्नि (व्युष्टिषु क्षपः) प्रातःकालमें तथा रात्रीमें यहां आवे । (सुतसोमाः कण्वासः) सोमरस निकाल कर ज्ञानी लोग या कण्वगोत्री लोग (त्वा हव्यवाहं इन्धते) हव्योंके वहन करनेवाले तुझ अग्निको प्रदीप्त कर रहे हैं । (८)

यहां उषःकालमें याजक अग्निको प्रदीप्त कर रहे हैं ऐसा कहा है।

१९७ हे (विश्वदर्शतः विभावसो अग्ने) विश्वमें दर्शनीय तेजस्वी अग्नि ! तू (उषसः पूर्वः अनुदीदेथ) उषाके पूर्व उसके पीछे पीछे आकर प्रकाशता है । तू (ग्रामेषु पुरोहितः अविता असि) तू गावोंमें अग्रगामी नेता रक्षक है और (यज्ञेषु मानुषः असि) यज्ञोंमें मानवोंका नेता है। (१०)

उषाके पीछे पीछे आनेवाला अग्नि है । अर्थात् उषःकालमें यज्ञाग्नि प्रदीप्त किया जाता है।

१९८ (सुदानवः अग्निजिह्वाः ऋतावृधः) उत्तम दान देनेवाले, अग्निके समान तेजस्वी भाषण करनेवाले और सत्य मार्गको बढानेवाले मरुत इस स्तोत्रको (शृण्वन्तु) सुनें । (धृतव्रतः वरुणः) व्रतका पालन करनेवाला वरुण अश्विदेव और उषाके साथ (सोमं पिबतु) सोमरस पीये । (१४)

यहां मरुत् वीर उषाके साथ सोमरस पीते हैं ऐसा कहा है ।

पहिली उषा

१९९ (एषा अपूर्व्या) यह अपूर्व-अद्वितीय- (दिवः प्रिया उषा) द्युलोककी प्रिय उषा (व्युच्छति) प्रकाश रही है । इसलिये हे अश्विदेवो ! (वां बृहत् स्तुषे) तुम दोनोंकी मैं विशेष स्तुति गाता हूं ॥ (१)

यहां उषाको द्युलोककी या सूर्यकी प्रिय कन्या कहा है। कन्या शब्द यहां नहीं है वह हमने अन्य मंत्रसे लिया है ।

(अपूर्व्या उषा) जो पूर्व समयमें कभी नहीं आयी थी वह उषा यह है अर्थात् यही पहिली उषा है । जहां प्रतिदिन उषा आती है वहां ऐसा कहा नहीं जा सकता । पर जहां सालमें बडे अन्धकारके पश्चात् प्रथम उषा प्रकाशती हो वहांही ऐसा वर्णन होना संभव है ।

ऋ० १ । ४६ । १४

२०० युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।
ऋता वनथो अक्तुभिः ॥ १४ ॥

ऋ० १ । ५६ । ४ (सव्य आंगिरसः । इन्द्रः । जगती)

२०१ देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः ।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥ ४ ॥

ऋ० १ । ५७ । ३; अथर्व २० । १५ । ३

२०२ अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे ।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

ऋ० १ । ६१ । ५ (नोधा गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२०३ गृणानो अंगिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः ।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवो रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥

---

२०० (परिज्मनोः युवोः श्रियं) भ्रमण करनेवाले तुम दोनोंकी शोभाके अनुकूल (उषा अनु उपाचरत्) उषा अनुसरती है । (अक्तुभिः ऋता वनथः) तुम रात्रीयोंमें यज्ञमें आकर सेवा लेते हो । (१४)

अश्विदेव प्रथम उदयको प्राप्त होते हैं और पश्चात् उषा उनके प्रकाशको अनुसरती है । उनके पीछे पीछे आती है । अश्विदेव मध्य रात्रीके उपरान्त उदय होते हैं इसलिये उनकी स्तुति उसी समय होती है ।

इस मंत्रमें उषाका उदय अश्विदेवोंके पीछे होता है ऐसा कहा है ।

उषाके पश्चात् सूर्योदय

२०१ (उषसं सूर्यः न) उषाके साथ सूर्य रहता है उस तरह (तविषी देवी) शक्ति देवी (त्वा वृधा) तेरे द्वारा बढाई हुई (इन्द्रं सिषक्ति) इन्द्रके सहायार्थ जाती है और (ऊतयः) रक्षण करती है । (यः धृष्णुना शवसा तमः बाधते) वह इन्द्र अपने शत्रु नाशक बलसे अन्धकारका नाश करता है (रेणुं इयर्ति) धूलीको उडाता है और (अर्हरिष्वनिः) शत्रुको रुलाकर भगा देता है । (४)

इस मंत्रमें उषाके पीछेसे सूर्य आता है इतनाही उषाका संबंध बताया है ।

२०२ हे (शुभ्रे उषः) गौरवर्ण उषा देवि ! (अस्मै भीमाय पनीयसे) इस महाबलवान और प्रशंसनीय इंद्रके लिये (अध्वरे न) इस यज्ञमे इसी समय (नमसा सं आभर) नमस्कारके साथ हवि अर्पण कर । (यस्य धाम इन्द्रियं नाम) जिसका धाम इन्द्रकी शक्तिसे प्रसिद्ध है और जिसने (श्रवसे ज्योतिः अकारि) यश बढानेके लिये तेज प्रकट किया है, (अयसे हरितो न) शीघ्र गमन करनेके लिये जैसे घोडे होते हैं उस तरह यह इसकी ज्योति है जो यश बढाती है । (३)

यहां उषा इन्द्रको अर्पण करनेके लिये हवि तैयार करती है । उषा शीघ्र उठकर आती है, घरमें अन्न पकानेकी तैयारी करती है, वैसी स्त्री अपने घरमें करे । यह बोध यहां मिलता है ।

२०३ हे (दस्म) दर्शनीय सुंदर इन्द्र ! (अंगिरोभिः गृणानः) अंगिराओंके द्वारा प्रशंसित होकर उषा, सूर्य और किरणोंके द्वारा (अन्धः वि वः) अन्धकारको दूर कर । हे इन्द्र ! (भूम्याः वि अप्रथयः) भूमिको विस्तृत किया और (दिवः सानु रजः उपरे अस्तभायः) द्युलोकके उच्चभागमें अन्तरिक्ष लोकको तुमने स्तब्ध किया है । (५)

यहां उषाके प्रकाशसे अन्धकार दूर करनेका वर्णन है । भूमिको विस्तृत करनेका तात्पर्य उच्च नीच भागको समतल कृषि योग्य बनाना है ।

ऋ० १।६२।८

२०४ सनाद् दिवं परि भूमा विरूपे पुनर्भुवा युवती स्वेभिरेवैः।
कृष्णेभिरक्तोषा रुशद्भिर्वपुर्भिरा चरतो अन्यान्या ॥ ८ ॥

ऋ० १।६९।१ (पराशरः शाक्त्यः। अग्निः। द्विपदा विराट्)

२०५ शुक्रः शुशुक्वाँ, उषो न जारः पप्रा समीची, दिवो न ज्योतिः।
परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां, पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥

ऋ० १।६९।५

२०६ उषो न जारो, विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै।
त्मना वहन्तो, दुरो व्यृण्वन् नवन्त विश्वे, स्व१र्दृशीके ॥ १० ॥

ऋ० १।७१।१

२०७ उप प्रजिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।
स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ् चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः ॥ १ ॥

रात्री और उषाका परिभ्रमण

२०४ (विरूपे पुनर्भुवा युवती) विरुद्ध रूपवाली पुनः पुनः होनेवाली दो स्त्रियां (स्वेभिः एवैः) अपने सामर्थ्योंसे (सनात् दिवं भूमा परि चरतः) सदासे द्युलोक और भूलोकके चारों ओर भ्रमण करती हैं। (कृष्णेभिः अक्ता) काले रंगोंसे रात्री और (रुशद्भिः वपुर्भिः उषा) तेजस्वी प्रकाशमय शरीरोंसे उषा (अन्या अन्या परि आ चरतः) एकके पीछे दूसरी घूम रही है। (८)

यहां उषा और रात्रीका भूमिके चारों ओर भ्रमण होनेका वर्णन है। द्युलोकके भी चारों ओर यह भ्रमण है। उत्तरीय ध्रुवस्थानमें देखनेवाला अपने चारों ओर इस तरह उषाका भ्रमण हो रहा है ऐसा देख सकता है, क्योंकि वहां अपने चारों ओरही उषा, सूर्य, नक्षत्र घूमते हैं। हमारे यहां ये ऊपर चढकर नीचे उतरते है।

स्त्री जारसे संबंध न करे।

२०५ (शुक्रः उषः जारः न) तेजस्विनी उषाको जीर्ण करनेवाला जैसा सूर्य है उस तरह (शुशुक्वान्) प्रकाशमान (दिवः ज्योतिः न) द्युलोककी ज्योतिके समान सूर्य (समीची पप्रा) समान रूपसे परस्पर मिलनेवाले द्युलोक और भूलोकको भरपूर भर देता है। (प्रजातः) उत्पन्न होते ही (क्रत्वा परि बभूथ) अपने प्रयत्नसे चारों ओर प्रकाशसे फैला है। यह (पुत्रः सन्) पुत्र होता हुआ (देवानां पिता भुवः) देवोंका पालन कर्ता हुआ है। (१)

सूर्य उषाका जार है। 'जार' शब्दका अर्थ यहां आयुका नाश करनेवाला है। सूर्य आनेसे उषाका नाशही होता है इस लिये यह उषाका जार है। जारसे आयुक्षीण होती है इसलिये जारसे संबंध करना नहीं चाहिये यह बोध यहां मिलता है।

२०६ (उषः न जारः विभावा) उषाके जार सूर्यके समान विशेष प्रकाशमान (उस्रः संज्ञातरूपः) सबका निवासक और सबके सामने दिखाई देनेवाला अग्नि (अस्मै चिकेतत्) इस यज्ञकर्ताको जाने, इसके विषयमें शुभ भाव धारण करे। (त्मना वहन्तः) स्वयं हवि लेनेवाला, (दुरः व्यृण्वन्) द्वारोंको खोलता है (विश्वे दृशीके स्वः नवन्त) संपूर्ण दर्शनीय आकाशमें किरण पहुंचते है। चारों ओर प्रकाश हो रहा है। (५)

उषाका जार सूर्य है। इसका बोध पूर्व मंत्रमें बताया है। जारसे कोई स्त्री संबंध न रखे।

२०७ (सनीळाः उशन्तीः जनयः) एक घरमें रहनेवाली कामुक स्त्रियां जैसी (उशन्तं नित्यं पतिं न) कामी पतिकी नित्य (उप प्रजिन्वन्) सेवा करती है, और (श्यावीं अरुषीं उच्छन्तीं उषसं) काली रात्री जो तेजस्वी बनकर उषाके रूपमें प्रकाशित होती है उसकी (गावः न) किरणें जैसी सेवा करती हैं, उस तरह (स्वसारः चित्रं) ज्वालारूप बहिनें चित्र विचित्र रंगवाले अग्निकी सेवा करती है। (१)

यहां उषाकी सेवा किरणें करती है, पतिकी सेवा कामुक स्त्रियां करती है और अग्निकी सेवा ज्वालाएं अथवा अंगुलियां करती हैं यह सादृश्य बताया है।

ऋ० १। ७३। ७

२०८ त्वे अग्ने सुमतिं भिक्षमाणा दिवि श्रवो दधिरे यज्ञियासः।
नक्ता च चक्रुरुषसा विरूपे कृष्णं च वर्णमरुणं च सं धुः ॥ ७॥

ऋ० १। ७९। १ (गोतमो राहूगणः। अग्निः। त्रिष्टुप्)

२०९ हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १॥

ऋ० १। ७९। ६

२१० क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः।
स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति ॥ ६॥ (वा. य. १५। ३७)

ऋ० १। ९४। ५ (कुत्स आंगिरसः। अग्निः। जगती)

२११ विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥ ५॥

मिलाप करनेवाली उषा

२०८ हे अग्ने! (सुमतिं भिक्षमाणा यज्ञियासः) सुमतिकी इच्छा करनेवाले याजक (दिवित्वे श्रवः दधिरे) दिव्य तेजसे युक्त ऐसे तेरे अन्दर अन्नकी आहुतियां समर्पण करते हैं। उन्होंने (नक्ता उषसा विरूपे चक्रुः) रात्री और उषाको विरुद्ध रूपवाली बनाया है और (कृष्णं अरुणं वर्णं च संदधुः) काला और अरुण वर्णका संयोग किया है। (७)

रात्री काली और उषा गौर वर्णवाली है। ये इनके परस्पर विरुद्ध रंग हैं। पर उष.कालमें काला और अरुण रंग एक स्थानपर मिलता है। अर्थात् उषा परस्पर विरुद्ध अवस्था-वालोंका मिलाप करनेवाली है।

२०९ (हिरण्यकेशः अहिः) सुनहरी किरणवाला आक्रमण करके शत्रुका हनन करनेवाला (धुनिः) शत्रुको हिलानेवाला (वातः इव ध्रजीमान्) वायुके समान गतिमान विद्युत् अग्नि (रजसः विसारे) अन्तरिक्षके ऊपरसे जलका विसर्जन होनेके स्थानमें अर्थात् वृष्टीके स्थानमें रहता है। उसको (शुचिभ्राजाः यशस्वतीः) शुद्ध तेजवाली यशस्विनी (अपस्युवः सत्याः न) कर्ममें कुशल सदा सत्यमार्गसे जानेवाली (उषसः) उषाएं (न वेदाः) जानती नहीं। (१)

विद्युत् अग्निको उषाएं जानती नहीं। पर वह अग्नि सब जानता है। उषाएं तेजस्विनी, यशस्विनी, कर्ममें कुशल और सत्यमार्ग प्रवर्तक हैं। ये उषाएं यज्ञाग्निको तो जानती हैं, पर विद्युदग्निको नहीं जानती, जो विद्युदग्नि अन्तरिक्षमें रहता है।

२१० हे (तिग्मजम्भ राजन् अग्ने) तीक्ष्ण जबडेवाले राजन् अग्ने (वस्तोः उत उषसः) दिनके समय, तथा उषःकालके समय (क्षपः) शत्रुका नाश कर (उत त्मना) और अपनी शक्तिसे (सः रक्षसः प्रतिदह) वह तू राक्षसोंका नाश कर। (६)

२११ हे अग्ने! तू (विशां गोपा.) प्रजाजनोंका रक्षण कर्ता है। (अस्य अक्तुभिः) इसके प्रकाश किरणोंसे (द्विपत् यत् उत चतुष्पद जन्तवः चरन्ति) द्विपाद और चतुष्पाद प्राणी चलते हैं। (उषसः महान् चित्रः प्रकेतः असि) उषाका बडा विलक्षण ध्वज जैसा तू है। हे अग्ने! (वयं तव सख्ये मा रिषाम) हम तेरी मित्रतामें विनष्ट नहीं होंगे। (५)

यहां अग्निको उषाका बडा ध्वज कहा है। अग्निका प्रज्वलित होना और उषाका आना एक समय होता है, इसलिये अग्निको उषाका ध्वज कहा है।

ऋ० १। ११५। २; अथर्व० १०। १०७। १५

२१२ सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥ २॥

ऋ० १। ११८। ११ (कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्)

२१३ आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ॥ ११॥

ऋ० १। १२१। ६ (इन्द्रो विश्वेदेवा वा। त्रिष्टुप्)

२१४ अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः।
इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६॥

ऋ० १। १३१। ६ (परुच्छेपो दैवोदासिः। इन्द्रः। अत्यष्टिः)

२१५ उतो नो अस्या उषसो जुषेत ह्य१र्कस्य बोधि हविषो हवीमभिः
स्वर्षाता हवीमभिः। यदिन्द्र हन्तवे मृधो वृषा वज्रिञ्चिकेतसि।
आ मे अस्य वेधसो नवीयसो मन्म श्रुधि नवीयसः ॥ ६॥

---

२१२ (मर्यः योषा न) पुरुष स्त्रीके पीछे जाता है उस तरह (सूर्यः) सूर्य (रोचमाना उषसं देवीं) तेजस्वी उषा देवीके (पश्चात् अभ्येति) पीछे पीछेसे जाता है। (देवयन्तः नरः) देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले लोग (यत्र) जहां (युगानि) योग्य कर्मोंको (प्रति वितन्वते) करते रहते हैं। (भद्राय भद्रं) कल्याणमय फल प्राप्त करनेके लिये कल्याणकारक कर्म करते हैं। (२)

उषाके पीछेसे सूर्य आता है। इसकी उपमा तरुणी स्त्रीके पीछेसे जानेवाले तरुण पुरुषकी दी है। यहां 'युग' का अर्थ स्त्रीपुरुषका जोडा ऐसा भी होना संभव है। देवत्व प्राप्ति करनेवाले स्त्रीपुरुष जोडा अर्थात् विवाह करते हैं और कल्याण प्राप्त करनेके लिये उत्तम कर्म करते हैं।

२१३ हे नासत्या! (श्येनस्य नूतनेन जवसा) श्येन पक्षीके नये वेगसे (सजोषाः) तुम दोनों मिलकर (अस्मे आ यातं) हमारे पास आओ। हे (अश्विना) अश्विदेवो! (रातहव्यः) हव्य तैयार करके (शश्वत्तमाया उषसः व्युष्टौ) शाश्वत् आनेवाली उषाका प्रकाश होनेपर (वां हवे हि) आपको मैं बुलाता हूं। (११)

यहां उषाका प्रकाश होनेके बाद अश्विदेवोंकी स्तुति होती है ऐसा कहा है।

२१४ (अध प्रजज्ञे) अब वह इन्द्र प्रकट हुआ है। यह (तरणिः ममत्तु) सबका तारक हमें आनन्द देवे। यह अब (प्र रोचि) प्रकाशित हुआ है (अस्याः उषसः सूरः न) इस उषाके साथ जैसा सूर्य प्रकाशता है। (जरणा इन्दुः) प्रशंसनीय सोमरसका (धाम स्रुवेण अभिसिंचन्) यज्ञस्थानपर स्रुवासे हवन होनेपर (येभिः स्वेदुहव्यैः आष्ट) इन हवनोंके बाद उसका प्राशन हम करते हैं। (६)

यहां उषाके साथ सूर्यका प्रकाशका वर्णन किया है। सोमरस हवन करके प्राशन करते हैं यह भी यहां कहा है।

२१५ (अस्या उषसः नः जुषेत) इस उषाके बाद वह इन्द्र हमारे स्तोत्रका सेवन करे। (हवीमभिः अर्कस्य हविषः बोधि) हवन करनेवालोंने किये स्तुति युक्त इस हविको तू जान। (स्वर्षाता हवीमभिः) उत्तम सुख देनेवाला तू हवन करनेवालोंने किये इस हवनको तुम जान लो। हे (वज्रिन् इन्द्र) वज्रधारी इन्द्र! (मृधः हन्तवे) शत्रुओंका वध करना (वृषा चिकेतसि) अपने सामर्थ्यसे तू सब जानता है। इसलिये (अस्य नवीयसः वेधसः मे मन्म) इस नवीन कविका मेरा यह स्तोत्र है उसको (श्रुधि) श्रवण कर। (६)

उषःकालमें स्तोत्रपाठ किया जाता है; उसका यह वर्णन है।

ऋ० १। १३४। ३ (परुच्छेपो दैवोदासिः। वायुः। अत्यष्टिः)

२१६ वायुर्युङ्क्ते रोहिता वायुररुणा वायू रथे अजिरा धुरि वोळ्हवे
वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे।
प्र बोधया पुरंधिं जार आ ससतीमिव।
प्र चक्षय रोदसी वासयोषसः श्रवसे वासयोषसः ॥ ३ ॥

ऋ० १। १३४। ४ (अत्यष्टिः)

२१७ तुभ्यमुषासः शुचयः परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते दंसु रश्मिषु
चित्रा नव्येषु रश्मिषु।
तुभ्यं धेनुः सबर्दुघा विश्वा वसूनि दोहते।
अजनयो मरुतो वक्षणाभ्यो दिव आ वक्षणाभ्यः ॥ ४ ॥

ऋ० १। १३७। २ (मित्रावरुणौ। अतिशक्वरी)

२१८ इम आ यातमिन्दवः सोमासो दध्याशिरः सुतासो दध्याशिरः।
उत वामुषसो बुधि साकं सूर्यस्य रश्मिभिः।
सुतो मित्राय वरुणाय पीतये चारुर्ऋताय पीतये ॥ २ ॥

---

२१६ (वायुः रोहिता युङ्क्ते) वायु लाल घोडे जोतता है। (वायुः अरुणा) वायु अरुण रंगके जोतता है, (वायुः रथे अजिरा) वायु अपने रथको तरुण घोडे जोतता है (धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरिवोळ्हवे) धुरामें जोतनेके लिये रथको अच्छी तरह ओढनेवाले घोडे जोतता है, धुरामें जोतता है। (प्रबोधय) तू भक्तको जगाओ (जारः ससतीं पुरंधिं आ) जार जिस तरह सोनेवाली अपनी प्रेयसी स्त्रीको जगाता है उस तरह तुम जगा दो। (रोदसी प्रचक्षय) द्यावापृथिवीको प्रकाशित कर (श्रवसे उषसः वासय, उषसः वासय) अन्न तथा यशके लिये उषाको प्रकट कर, उषाओंको रहने दो। (३)

यहां उषाओंको प्रकाशित करनेके लिये वायुकी प्रार्थना है। यहां अनेक उषाओंका उल्लेख है।

२१७ हे वायो! (शुचयः उषासः तुभ्यं) शुद्ध उषाएं तेरे लिये (परावति भद्रा वस्त्रा तन्वते) दूर आकाशमें उत्तम वस्त्रोंको फैलाती हैं। (दंसु रश्मिषु नव्येषु रश्मिषु चित्रा) दर्शनीय सुंदर किरणोंमें, नवीन किरणोंमें ये विलक्षण वस्त्र फैलाती है। (सबर्दुघा धेनुः) उत्तम दूध देनेवाली गौ (तुभ्यं विश्वा वसूनि दोहते) तुम्हारे लिये सब धनोंका दोहन करती है। (वक्षणाभ्यः मरुतः अजनयः) नदियोंके लिये मरुतोंको उत्पन्न किया। (वक्षणाभ्यः दिवः आ) नदियोंके लिये द्युलोकसे उत्पन्न किया है। (४)

उषाएं सुंदर रंगीन वस्त्र आकाशमें फैलाती है ऐसा यह सुंदर वर्णन है।

२१८ हे (इन्दवः) सोमके रसो! (इमे सोमासः आयातं) ये सोमरस इधर आजाय। ये (सुतासः) निचोडे हुए सोमरस (दध्याशिरः) दहीके साथ मिलाये हैं। हे (उषासः) उषाओ! (उत वा) और तुम (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्यके किरणोंके साथ (बुधि) जानो कि यह सोमरस मित्र और वरुणके (पीतये) पीनेके लिये (सुतः) निकाला है, यह (ऋताय पीतये चारुः) यज्ञके समय पीनेके लिये उत्तम है। (२)

उषा सूर्य प्रकाशके साथ जिस समय प्रकाशती है उस समय सोमरस छानकर दहीके साथ मिलाकर तैयार रखे जाते हैं।

ऋ० १ । १५१ । ५ (दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । जगती)

२१९ मही अत्र महिना वारमृण्वथोऽरेणवस्तुज आ सद्मन् धेनवः ।
स्वरन्ति ता उपरताति सूर्यमा निम्रुच उषसस्तक्ववीरिव ॥ ५ ॥

ऋ० १ । १५७ । १ (अश्विनौ । जगती)

२२० अबोध्यग्निर्ज्म उदेति सूर्यो व्युषाश्चन्द्रा मह्यावो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत् पृथक् ॥१॥

ऋ० १ । १७९ । १ (लोपामुद्रा । रति । त्रिष्टुप्)

२२१ पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः ।
मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यु नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥ १ ॥

ऋ० १ । १८० । १ (अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप्)

२२२ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि दीयत् ।
हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः सचेथे ॥ १ ॥

---

२१९ (अत्र) यहां (मही) पृथ्वीके ऊपर (महिना वारं ऋण्वथः) तुम अपने महत्वसे स्वीकार करने योग्य धन देते हो । (अरेणवः तुजः धेनवः सद्मन आ) निर्मल त्वरासे जानेवाली गौवें घरके पास आ रही हैं । (उपर-ताति सूर्यं) ऊपरके आकाशमें सूर्यको (निम्रुचः उषसः) अस्तमानके तथा उषाके समय (तक्वीः इव , हिंसक पक्षी शब्द करते हैं उस तरह (ता स्वरन्ति) वे शब्द करती हैं । (५)

उषःकालमें स्वर करती हुई गौवें आती हैं । उसका यह उत्तम वर्णन है ।

२२० (अग्निः अबोधि) अग्नि जाग्रत हुआ है, (ज्मः सूर्यः उदेति) गतिमान सूर्यका उदय हो रहा है । (चन्द्रा मही उषाः) आनन्ददायक बडी उषा (अर्चिषा वि आवः) तेजके साथ प्रकाशित हो रही है । (अश्विना यातवे रथं आयुक्षत) अश्विदेवोंने जानेके लिये अपना रथ जोडा है, (सविता देवः पृथक् जगत् प्रासावीत्) सूर्यदेवने पृथक् पृथक् प्राणियोंको कर्ममें प्रवृत्त किया है । (१)

यहां आल्हाददायक उषा अपने महत्त्वके साथ और अपूर्व प्रकाशके साथ प्रकाशित हुई है ऐसा रमणीय वर्णन है । यह मंत्र प्रातः कालका उत्तम काव्यमय वर्णन कर रहा है ।

२२१ (दोषावस्तो. जरयन्ती उषसः) रात्रीमें और दिनमें और वृद्धावस्था लानेवाले उषःकालमें भी (अहं शश्रमाणा) मैं परिश्रम कर रही थी और (पूर्वीः शरदः) पहिले वर्ष इस तरह चले गये । अब (जरिमा तनूनां श्रियं मिनाति) यह वृद्धावस्था शरीरकी शोभाका नाश कर रही है । (अपि ऊ नु) तथापि (वृषण पत्नीः जगम्युः) बलवान् पुरुष स्त्रियोंके पास जाते ही हैं । (१)

यह उषःकालमें भी परिश्रम करनेवाली स्त्रीका वर्णन है । यह स्त्री अब वृद्ध हुई है और वह अपना अनुभव बोल रही है । ऐसा यह अलंकार है ।

२२२ (यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अर्णांसि परि दीयत्) अन्तरिक्षके समुद्रमें संचार करने लगता है तब (युवोः अश्वाः) तुम दोनोंके घोडे (रजांसि सुयमासः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं । (वां हिरण्ययाः पवयः) तब आपके सुवर्णमय पहियोंके आरे (प्रुषायन्) गीले होने लगते हैं । (उषसः) उषःकालमें (मध्व. पिबन्तः सचेथे) मीठे सोमरस पीते हुए तुम दोनों इकट्ठे होकर जाते हो । (१)

उषःकालमें मीठा-सोमरस पीये और मिलकर किसी कार्यके लिये बाहर जाय ।

ऋ० १ । १८३ । २

२२३ सुवृद् रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत् तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥ २ ॥

ऋ० १ । १८४ । १

२२४ ता वामद्य तावपरं हुवेमोच्छन्त्यामुषसि वह्निरुक्थैः ।
नासत्या कुह चित् सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥ १ ॥

ऋ० २ । २ । ७ (गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गवः शौनक । अग्निः । जगती)

२२५ दा नो अग्ने बृहतो दाः सहस्रिणो दुरो न वाजं श्रुत्या अपा वृधि ।
प्राची द्यावापृथिवी ब्रह्मणा कृधि स्व१र्ण शुक्रमुषसो वि दिद्युतुः ॥५॥

ऋ० २ । २ । ८

२२६ स इधान उषसो राम्या अनु स्व१र्ण दीदेदरुषेण भानुना ।
होत्राभिरग्निर्मनुषः स्वध्वरो राजा विशामतिथिश्चारुरायवे ॥ ८ ॥

---

२२३ (क्रतुमन्तः) कार्यमें तत्पर हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु) हविष्यान्नके पीछे जानेके लिये (यत् तिष्ठथ) जहां ठहरते हो वह (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अभिवर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है । (वपुष्या इयं गीः) सुंदर रसमयी यह वाणी (वपुः सचता) तुम्हारी रसमयी वृत्तीको प्राप्त हो जाय, अर्थात् तुम्हें आनन्द देवे । (दिवः दुहित्रा उषसा) स्वर्गकन्या उषासे तुम दोनों (सचेथे) युक्त होते हैं । (२)

उषाके साथ अश्विदेव रहते हैं । अश्विदेव आते हैं पश्चात् उषा आती है

२२४ हे (दिवः न-पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (नासत्या) सत्यपालक अश्विदेवो ! (अद्य ता वां) आज उन तुम दोनोंको (अपरं) दूसरे दिन भी (तौ हुवेम) तुम दोनोंको ही हम बुलाते हैं । (उच्छन्त्यां उषसि) अन्धकार दूर करनेवाले उषःकालमें (उक्थैः वह्निः) स्तोत्रोंसे अग्नि प्रदीप्त किया जाता है । (कुहचित् सन्तौ) तुम कहीं भी रहो, पर (सु-दास्तराय) उत्तम दानीके पास इधर आओ । ऐसी (अर्यः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ।(१)

उषःकालमें स्तोत्रोंसे अग्नि प्रदीप्त करनेका उल्लेख यहां इस मंत्रमें है ।

बल बढानेवाली उषाएं

२२५ हे अग्ने ! (नः बृहतः दाः) हमें बडा धन दे दो । (सहस्रिणः दाः) हमें हजारों प्रकारके धन दे दो । (श्रुत्या वाजं) यशके साथ बल (दुरः न अपावृधि) दरवाजे खोलकर देनेके समान दे दो । (द्यावापृथिवी ब्रह्मणा प्राची कृधि) द्यु और पृथिवी ज्ञानसे हमारे लिये मंगलकारी करो । (स्वः न) सूर्यके समान (उषसः शुक्रं वि दिद्युतुः) उषायें शुभ्रकिरण हमारे ऊपर प्रकाशित करें । (७)

उषाएं हमारे लिये प्रकाश, वीर्य, बल देनेवाली हों । 'शुक्र' का अर्थ ' शुद्ध, वीर्य, बल और प्रकाश है ।'

२२६ (राम्या अनु इधानः सः) रात्रीके अनुसार प्रदीप्त होता हुआ वह अग्नि (उषसः) उषःकालमें (अरुषेण भानुना) लाल रंगके प्रकाशसे (स्व नं) सूर्यके समान (दीदेः) प्रकाशता रहे । (होत्राभिः स्वध्वरः अग्निः) हवनोंसे उत्तम रीतिसे आहुति दिया हुआ यह अग्नि (मनुषः) मनुष्योंके यज्ञोंमें (विशां राजा) प्रजाओंका शासक तथा (आयवे चारुः अतिथिः) मनुष्योंके लिये उत्तम अतिथि जैसा होवे (८)

उषःकालमें लालरंगके प्रकाशसे प्रदीप्त होनेवाले अग्निका वर्णन यहां है ।

ऋ० १।८।३

२२७ य उ श्रिया दमेष्वा दोषोषसि प्रशस्यते ।
यस्य व्रतं न मीयते ॥ ३ ॥

ऋ० १।१२।७ (इन्द्रः । त्रिष्टुप्)

२२८ यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः ।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥ ७ ॥

ऋ० २।१५।६

२२९ सोदञ्चं सिन्धुमरिणान्महित्वा वज्रेणान उषसः सं पिपेष ।
अजवसो जविनीभिर्विवृश्चन् त्सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥ ६ ॥

ऋ० २।२०।५

२३० सो अंगिरसामुचथा जुजुष्वान् ब्रह्मा तूतोदिन्द्रो गातुमिष्णन् ।
मुष्णन्नुषसः सूर्येण स्तवानश्नस्य चिच्छिश्नथत् पूर्व्याणि ॥ ५ ॥

ऋ० २।२१।४ (जगती)

२३१ अनानुदो वृषभो दोधतो वधो गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः ।
रध्रचोदः श्नथनो वीळितस्पृथुरिन्द्रः सुयज्ञ उषसः स्वर्जनत् ॥ ४ ॥

२२७ (यः उ दमेषु) जो अग्नि हमारे घरोंमें (दोषा उषसि) रात्रीमें और उषः कालमें उसकी (श्रिया आ प्रशस्यते) शोभाके कारण प्रशंसित होता है, (यस्य व्रतं न मीयते) जिसके नियमोंका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता । (३)

उषः कालमें अग्निके गुण गाये जाते हैं ।

उषाका उत्पन्न कर्ता इन्द्र

२२८ (यस्य प्रदिशि) जिसके आदेशमें घोडे, गायें, ग्राम और (विश्वे रथासः) सब रथ हैं । (यः सूर्यं यः उषसं जजान) जिसने सूर्यको और उषाको उत्पन्न किया है, (यः अपां नेता) जो जलोंका प्रवाह चलाता है, हे (जनास) लोगो ! (सः इन्द्रः) वही इन्द्र है । (७)

इन्द्रने उषाको उत्पन्न किया ऐसा यहां कहा है ।

उषाका रथ तोडनेवाला इन्द्र

२२९ (स. महित्वा सिन्धुं उदञ्चं अरिणात्) उसने अपने सामर्थ्यसे नदिको उलटी दिशासे प्रवाहित किया । (उषसः अनः वज्रेण सं पिपेष) उषाके रथको वज्रके प्रहारसे तोड दिया । (अजवसः जविनीभिः विवृश्चन्) वेगहीनोंको वेगवानोंमें बदल दिया । वेगहीनोंको वेगवान सेनाओंके साथ लडवाया और शत्रुको परास्त किया । (सोमस्य मदे ताः इन्द्रः चकार) सोमके उत्साहमें इन्द्रने ये पराक्रम किये । (६)

उषाके रथको इन्द्रने तोडा । यह बात ४ । ३० । ८; १० । १३८ । ५ में और स्पष्ट रीतिसे लिखी है ।

२३० (स अंगिरसा उचथा जुजुष्वान्) वह अंगिरसोंके स्तोत्र सुनता रहा । (इन्द्रः गातुं इष्णन् ब्रह्म तूतोर्द) इन्द्रने मार्ग ढूंढनेकी इच्छासे स्तोत्रका संवर्धन किया । अर्थात् ज्ञानसे उसने मार्ग प्राप्त किया । (सूर्येण उषसः मुष्णन्) सूर्यके प्रकाशसे इन्द्रने उषाओंके प्रकाशको छीन लिया । और (अश्नस्य पूर्व्याणि चित् शिश्नथत) अश्न असुरके पहिले बलोंको भी नष्ट कर दिया । (५)

यहां सूर्य प्रकाशसे उषाको नष्ट करनेका वृत्त है । प्रतिदिन यही होता है ।

२३१ (अन्-आनु-दः) अनुपम दानी (वृषभः) बलवान् (दोधत. वधः) शत्रुओंका नाश करनेवाला, गंभीर, (ऋष्वः) महान् (असमष्टकाव्यः) अतर्क्य ज्ञानवाला (रध्र-चोदः) वीरोंका उत्साह बढानेवाला, (श्नथतः) दुष्टोंका घातक (वीळितः) सुदृढ (पृथुः) बडा (सुयज्ञः) उत्तम

ऋ० २।२८।२ (कूर्मो गार्त्समदो गृत्समदो वा । वरुणः । त्रिष्टुप्)

२३२ तव व्रते सुभगासः स्याम स्वाध्यो वरुण तुष्टुवांसः ।
उपायन उषसां गोमतीनामग्नयो न जरमाणा अनु द्यून् ॥ २ ॥

ऋ० २।२८।९

२३३ पर ऋणा सावीरध मत्कृतानि माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् ।
अव्युष्टा इन्नु भूयसीरुषास आ नो जीवान् वरुण तासु शाधि ॥ ९ ॥

ऋ० २।३४।१२ (गृत्समद (आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । मरुत् । जगती)

२३४ ते दशग्वाः प्रथमा यज्ञमूहिरे ते नो हिन्वन्तूषसो व्युष्टिषु ।
उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गोअर्णसा ॥ १२ ॥

ऋ० ३।५।१ (गाथिनो विश्वामित्रः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

२३५ प्रत्यग्निरुषसश्चेकितानोऽबोधि विप्रः पदवीः कवीनाम् ।
पृथुपाजा देवयद्भिः समिद्धोऽप द्वारा तमसो वह्निरावः ॥ १ ॥

यज्ञ करनेवाला ऐसा इन्द्र (उषसः स्वः जनत्) उषाओंका प्रकाश फैलाता है। (४)

उषा, सूर्य और प्रकाशका फैलानेवाला इन्द्र है।

२३२ हे वरुण ! (तुष्टुवांसः) तेरे गुण गानेवाले तथा (स्वाध्यः) विचार पूर्वक कार्य करनेवाले हम (तव व्रते सुभगासः स्याम) तेरे कार्य करनेमें तत्पर रहनेसे उत्तम भाग्यसंपन्न बनेंगे। (अनु द्यून् जरमाणाः अग्नय न) प्रतिदिन स्तुति किये जानेवाले अग्नि (गोमतीना उषसा उपायने) गौवों वाली उषाओंके समीप जैसे बढते हैं वैसे हम बढें। (२)

उषःकालमें गौवें घूमने लगती हैं और उस समय अग्नि भी प्रदीप्त होते हैं।

आनेवाली बहुत उषाएँ

२३३ (ऋणा परा सावीः) ऋण दूर कर (अध मत्कृतानि) और मेरे किये हुए ऋण हैं उनको भी दूर कर। हे राजन् ! (अहं अन्यकृतेन मा भोजं) मैं दूसरेका किया हुआ न भोगूं। क्योंकि अभी (भूयसीः उषासः अव्युष्टा इत् नु) बहुतसी उषायें आनेवाली हैं उनमें हे वरुण ! (नः जीवान् तासु आ शाधि) हम जीवेंगे, उनमें हमें सुशिक्षा दे दो। (९)

आनेवाली उषाओंका उल्लेख यहां है।

२३४ (ते दशग्वाः प्रथमाः यज्ञं ऊहिरे) उन दशग्व अर्थात् दस महिने यज्ञ करनेवालोंने प्रथम यज्ञका अनुष्ठान किया। (ते उषसः व्युष्टिषु नः हिन्वन्तु) वे उषःकालका प्रकाश होनेपर हमें प्रेरणा करें। (उषा न रामीः अरुणैः अपोर्णुते) जिस तरह उषा रात्रीको अपने अरुण वर्णके प्रकाशसे दूर करती है, उस तरह (महः शुचता ज्योतिषा गो-अर्णसा) बडे शुद्ध ज्योतिके प्रकाशके समुद्रसे अन्धकार दूर होता है। (१२)

इस मंत्रमे दो वार उषा पद है। प्रथम उषा लोगोंको सत्कर्ममें प्रेरित करती और दूसरी वारकी उषा रात्रीको दूर करती है।

२३५ (उषसः चेकितानः) उषाओंको जाननेवाला (अग्निः प्रति अबोधि) अग्नि जाग उठा है, यह (कवीनां पदवीः विप्रः) यह ज्ञानियोंके मार्गसे जानेवाला विशेष ज्ञानी है। (पृथु-पाजाः देवयद्भिः समिद्धः) बहुत प्रकाशमान् देव बननेकी इच्छावालोंने प्रदीप्त किया हुआ (वह्निः) अग्नि (तमसः द्वारा अप आवः) अन्धकारके द्वार खोल देता है जिससे अन्धकार दूर होता है। (१)

उषाओंको अग्नि जानता है ऐसा यहां कहा है।

ऋ० ३ । ५ । २

२३६ प्रेद्धाग्निर्वावृधे स्तोमेभिर्गीर्भिः स्तोतॄणां नमस्य उक्थैः ।
पूर्वीर्ऋतस्य संदृशश्चकानः सं दूतो अद्यौदुषसो विरोके ॥ २ ॥

ऋ० ३ । ६ । ७

२३७ दिवश्चिदा ते रुचयन्त रोका उषो विभातीरनु भासि पूर्वीः ।
अपो यदग्न उशधग्वनेषु होतुर्मन्द्रस्य पनयन्त देवाः ॥ ७ ॥

ऋ० ३ । ७ । १०

२३८ पृक्षप्रयजो द्रविणः सुवाचः सुकेतव उषसो रेवदूषुः ।
उतो चिदग्ने महिना पृथिव्याः कृतं चिदेनः सं महे दशस्य ॥ १० ॥

ऋ० ३ । १४ । ३

२३९ द्रवतां त उषसा वाजयन्ती अग्ने वातस्य पथ्याभिरच्छ ।
यत् सीमञ्जन्ति पूर्व्यं हविर्भिरा बन्धुरेव तस्थतुर्दुरोणे ॥ ३ ॥

ऋ० ३ । १५ । २ (कात्य उत्कीलः । अग्निः । त्रिष्टुप्)

२४० त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ २ ॥

---

२३६ (स्तोमेभिः गीर्भिः) स्तोत्रों और वर्णनोंसे और (स्तोतॄणां उक्थैः नमस्यः) स्तोताओंके गानोंसे नमस्कार किया जाने योग्य अग्नि (प्रवावृधे) बढ रहा है। (ऋतस्य पूर्वीः संदृशः चकानः) सूर्यके पहिले आनेवाले प्रकाशकी इच्छा करनेवाला (दूतः) दूत अग्नि (उषसः विरोके सं अद्यौत्) उषाके सामने प्रकाशता है। (२)

यहां उषाके साथ अग्नि भी प्रकाशता है ऐसा कहा है।

२३७ (ते रोकाः दिवः चित् आरुचयन्तः) तेरे प्रकाश द्युलोकके सूर्य प्रकाशसे भी अधिक चमकते है। जब तू (पूर्वीः विभातीः उषः अनुभासि) पहिली तेजस्वी उषाओंके पीछेसे प्रकाशता है। (अग्ने) हे अग्ने ! (यत् वनेषु अपः उषधक्) जब वनोंमें तू जलोंको भी और गीले वृक्षोंको भी इच्छाके अनुसार जला देता है तब (देवाः मन्द्रस्य होतुः पनयन्त) देव प्रशंसनीय होता अग्निकी किरणोंकी प्रशंसा करते हैं। (७)

यहां उषःकालमें उषाके प्रकाशके पश्चात् सूर्य प्रकाशका आना वर्णन किया है।

२३८ हे (द्रविणः) धनवान् अग्ने ! (पृक्षप्रयजः) हवि जिनके लिये दिया जाता है, (सुवाचः सुकेतवः) उत्तम भाषण जिसमें होते हैं और उत्तम ध्वज जिनके लिये फहर रहे हैं ऐसी (उषसः रेवत् ऊषुः) उषायें धनके साथ प्रकाश रही हैं। हे (महे) बडे अग्ने ! (पृथिव्याः महिना) पृथिवीकी महिमासे (उत उ एनः कृतं चित्) जो हमने पाप किया हो उसको (संदशस्य) उत्तम रीतिसे दूर कर। (१०)

यहांके उषाके वर्णनमें हवन हो रहे हैं, मंत्र बोले जा रहे हैं, ध्वज फहर रहे हैं ऐसी उषाएं है। ऐसा वर्णन देखने योग्य है।

२३९ हे अग्ने ! (वाजयन्ती उषसा) अन्नवाली उषा और रात्री (ते द्रवता) तेरे पास आवे। (वातस्य पथ्याभिः अच्छ) वायुके मार्गसे शीघ्र पहुंचो। (यत् सीं पूर्व्यं हविर्भिः अञ्जन्ति) इस पुराण पुरुषका हविसे सत्कार करते हैं। ये दोनों (दुरोणे बन्धुरा इव आ तस्थतुः) घरमें रथके दो बैठकोंपर बैठते हैं वैसे आकर बैठें। (३)

यहां उषा और रात्री दोनोंका वर्णन उषासे ही हुआ है। अर्थात् यह रात्री प्रभात कालकी उषाके साथ रहनेवाली है।

२४० (अस्याः उषसः व्युष्टौ त्वं नः) इस उषाके प्रकाशित होनेपर तू हमारा होकर रह। (उदिते सूरे त्वं गोपाः बोधि) सूर्यका उदय होनेपर तू हमारा रक्षक है, यह समझ लो (तन्वा सुजात अग्ने) हे शरीरसे उत्तम उत्पन्न हुए अग्ने ! (जन्म इव नित्यं तनयं) जन्मे हुए बालकके समान (मे स्तोमं जुषस्व) मेरे स्तोत्रका स्वीकार कर। (२)

संस्कृत भाषा परीक्षाओंका पाठ्य-क्रम
हिन्दी पाठ्य पुस्तक सूची

१-संस्कृतभाषा प्रारम्भिणी परीक्षा

शुल्क-१·८० (प्रश्नपत्र १) अंक १०० समय ३ घण्टे

१ संस्कृत पाठमाला प्रथम भाग मूल्य ०·८·०
२ ,, ,, द्वितीय भाग ,, ०·८·०

२-संस्कृतभाषा प्रवेशिका परीक्षा

शुल्क-२·८·० (प्रश्नपत्र २) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे

पूर्णाङ्क १००

पहला प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ३ मूल्य ०·८·०
२- ,, ,, ,, ४ मूल्य ० ८ ०
द्वितीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ५ ,, ०·८·०
२- ,, ,, ,, ६ ,, ० ८·०

४-संस्कृतभाषा परिचय परीक्षा

शुल्क-३ ८ ० (प्रश्नपत्र ३) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे

पूर्णाङ्क १००

पहला प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ७ मूल्य ० ८·०
२- ,, ,, ,, ८ , ०·८·०
द्वितीय प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग ९ मूल्य ०·८·०
२- ,, ,, ,, १० ,, ०·८ ०
तृतीय प्रश्नपत्र १- ,, ,, ,, ११ ०·८·०
२- ,, ,, ,, १२ ,, ० ८ ०

संस्कृत भाषा विशारद परीक्षा

शुल्क ५·०·० (प्रश्नपत्र ४) प्रत्येक प्रश्नपत्र ३ घण्टे

पूर्णाङ्क १००

प्रथम प्रश्नपत्र १-संस्कृत पाठमाला भाग १३ मूल्य ०·८·०
द्वितीय प्रश्नपत्र २ संस्कृत पाठमाला भाग १४ ,, ०·८·०
तृतीय प्रश्नपत्र १- ,, ,, ,, १५ , ० ८·०
२- ,, ,, ,, १६ ,, ० ८·०
चतुर्थ प्रश्नपत्र १- ,, ,, ,, १७ ,, ० ८·०
२- ,, ,, ,, १८ ,, ०·८·०

मराठी पाठ्यक्रम

सूचना- हिंदी भाषेतील ' संस्कृत-पाठ-माला ' या पुस्तकाचे १८ भाग मराठीत अनुवादित झाले आहेत. मराठी पुस्तकाचें नाव ' संस्कृत-स्वय-शिक्षक ' आहे.

ગુજરાતી પાઠયક્રમ

સંસ્કૃત પાઠમાળાની ગુજરાતી નવીન આવૃત્તિ-ઓનુ નામ ' સંસ્કૃત-પાઠમાળા ' ને બદલે ' સંસ્કૃત-સ્વય-શિક્ષક ' રાખ્યુ છે તદુપરાત દરેક બબ્બે ભાગનુ સાથે બાઇન્ડીંગ કરી એક એક ભાગ બનાવવામા આવ્યા છે

સૂચના · સંસ્કૃત-સ્વય-શિક્ષકના દરેક ભાગની કિમ્મત દોઢ રૂપિયો છે.

सितंबर सन् १९५२ ई की संस्कृत परीक्षाओंम अधिक अङ्क प्राप्त करके उत्तीर्ण होनेवाले परीक्षार्थी समिति द्वारा पुरस्कृत किये गये है । इस पुरस्कृत परीक्षार्थियों के नाम एवं सर्वप्रथम परीर्थियोंके नाम १ जनवरीके अङ्कमें प्रकाशित होंगे ।

हमारे नये केन्द्र

१ श्री बलजीनाथ पंडित प्रोफेसर, गव्हर्नमेन्ट कॉलेज, पोष्ट अनन्तनाग, काश्मीर
२ श्री. अमृतलाल व्रजलाल सोनी (शिक्षक) कुमारशाळा, भवाव पो ठासरा
३ श्री सुधीर मोदी, मत्री, ग्रामपचायत मु. पो खाल्वड, ता कामरज, स्टेशन-मायण
४ श्री कुमारी सुशीलादेवी शिंदे हि प्रचार कला मन्दिर मु. पो तॉडूर, जि गुलबर्गा
५ श्री पांडतराव रेणुराव करवेकर पो. ता. अंबड, जि. औरंगाबाद
६ श्री कृष्ण विश्वनाथ कानुगो मुख्याध्यापक, न्यू इंग्लीश स्कूल पो. नशिराबाद (पू खानदेश)
७ श्री. वेंकट रेड्डी (आंध्र हिंदी प्रचार विद्यालय) मु पो. गोट्टीपर्ति, जि. नलगोंडा
८ श्री. हेडमास्तर के. एम् बक्षी गव्हर्नमेन्ट हायस्कूल पो. वाशीम (जि अकोला)
९ श्री बालकृष्ण गोपाळ शास्त्री पो. मालेगांव जहागीर ता वाशीम (जि अकोला)
१० श्री अमृतराय प्रेमशंकर त्रिवेदी, महुवा तालुका शाळा मु पो महुवा, व्हाया-बारडोली

Regd No

वैदिक संपत्ति

की सहूलियत थोडे दिनतक ही मिलेगी

२५ पुस्तकोंका अग्रिम मूल्य आनेपर प्रति पुस्तक						५।)	मे मिलेगी
५०	,,	,,	,,	,,	,,	५)	,,
७५	,,	,,	,,	,,	,,	४॥।)	,,
१००	,,	,,	,,	,,	,,	४॥)	,,

पकिंग तथा मालगाडीका किराया भी हम देंगे।

वैदिक संपत्तिके पहिले विज्ञापन रद्द हुए हैं। इस विज्ञापनका संपूर्ण मूल्य आर्डरके साथ आना चाहिये।

पत्रव्यवहारका पता—

मन्त्री, स्वाध्याय-मण्डल, 'आनन्दाश्रम'

किल्ला-पारडी [जि सूरत]

सचित्र श्रीवाल्मीकीय रामायणका मुद्रण

"बालकांड, अयोध्याकांड (पूर्वार्ध--उत्तरार्ध), सुंदरकांड, अरण्यकांड तथा किष्किन्धाकांड" तैयार है।

रामायणके इस संस्करणमें पृष्ठके ऊपर श्लोक दिये हैं, पृष्ठके नीचे आधे भागमें उनका अर्थ दिया है, आवश्यक स्थानोंमें विस्तृत टिप्पणियां दी हैं। जहां पाठके विषयमें सन्देह है, वहां हेतु दर्शाया है।

इसका मूल्य

सात काण्डोंका प्रकाशन १० भागोंमें होगा। प्रत्येक भाग करीब ५०० पृष्ठोंका होगा। प्रत्येक भागका मूल्य ४) रु. तथा डा०व्य० रजिस्ट्रीसमेत ॥=) होगा। यह सब व्यय ग्राहकोंके जिम्मे रहेगा। प्रत्येक ग्रंथ यावच्छक्य शीघ्रतासे प्रकाशित होगा। प्रत्येक भागका मूल्य ४) रु० है. अर्थात् सब दसों भागोंका मूल्य ४०, और सबका डा०व्य० ६) रु० है। कुल मू० ४६ रु० म० आ० से भेज दें।

मंत्री, स्वाध्याय-मंडल, किल्ला पारडी, (जि० सूरत)

मुद्रक और प्रकाशक- व० श्री० सातवळेकर, बी. ए., भारत-मुद्रणालय, आनंदाश्रम, किल्ला-पारडी (जि. सूरत)